रक्त की रेखा

(वीर-काव्य)

लेखक

शील चतुर्वेदी

साहित्य निकुंज

प्रकाशन

प्रकाशक
साहित्य-निकुंज
१९ शिवचरन लाल रोड
प्रयाग

मूल्य २॥)

मुद्रक
पं० जयराम भार्गव
युनिवर्सल प्रेस
प्रयाग

Do you want the fragrance of the full-blown rose? If so, you must accept the thorns. Do you want the sweetness of the smiling dawn? If so, you must live through the dark hours of the night. Do you want the joy of liberty and the solace of freedom? If so, you must pay the price. And the price of liberty is suffering and sacrifice.

Bombay
31. 12. 31

Subhas Chandra Bose.

राष्ट्र-कवि गुप्त जी की कामना

प्रिय शील जी,

आप अपनी कवित्व शक्ति का ऐसा ही सदुपयोग करते रहें यही मेरी कामना है।

'जय हिन्द' के माथे पर हमारे कवि की लेखनी अपनी हार्दिक 'रक्त-रेखा' का टीका काढ़ने जाय तो कौन उसका अभिनन्दन न करेगा? मैं तो उसका बन्दन करता हूँ।

चिरगाँव
नागपञ्चमी
२००३

मैथिली शरण गुप्त

'रक्त की रेखा' का एक मात्र उद्देश्य है, अमर सेनानी श्री सुभाषचन्द्र बोस के सम्बन्ध में फैली हुई राजनैतिक भ्रांत धारणाओं का उन्मूलन।

× × ×

नेता जी के पवित्र संकल्प-सूर्य पर लोगों ने जो काले बादलों की चादर डालने की चेष्टा की है, कवि ने कलम की नोंक से उस अपवाद को विदीर्ण कर दिया है। घटना की वास्तविकता, इतिहास के तथ्य और उद्देश्य की पवित्रता का दिग्दर्शन अपने पाठकों के सन्मुख लाना ही कवि का लक्ष्य है। उसे अपनी अनुभूति और तर्क में विश्वास है—जब तक मानव में जीवन है, मानव जीवन में काव्य-कला, देखें फिर कौन मिटाता है, जग से सच्चा इतिहास भला। इसी अडिग विश्वास के साथ कवि ने अपने आराध्य नायक श्री नेता जी के शौर्य, पराक्रम, साहस तथा आदर्श का चमत्कारपूर्ण वर्णन अपनी शैली में किया है।

× × ×

ग्रन्थ का विषय स्तुत्य है। भाषा प्रवाहपूर्ण और मँजी हुई, शैली ओजपूर्ण, वीर-रौद्र अद्‌भुत रसों का सुन्दर निरूपण, हर घटनास्थल का मार्मिक और लोमहर्षक चित्रण, प्रत्येक छंद कवित्वपूर्ण और ग्रन्थ में कलात्मक अभिव्यंजना की झाँकी है। सम्पूर्ण दृष्टि से 'रक्त की रेखा' हिन्दी का सफल 'प्रबन्ध-काव्य' है, तथा युग-साहित्य सृजन का अभिनंदनीय प्रयास है।

× × ×

ग्रन्थ की इति कवि के इन शब्दों में हुई है :

यह रेखा अभी अधूरी है, कम हो न शहीदों का विक्रम,
बलिदान इसे पूरा कर दे, तब पुनः चलेगी रुकी कलम।

इससे तरुण साहित्यकारों को बल मिलेगा। गीतकारों को जीवन और मृत्यु का सुन्दर राग, चित्रकारों की तूलिका के लिये रक्त का लाल रङ्ग, देश पर बलिदान होने वालों के लिये आग की हल्की चिनगारी और राष्ट्र के सैनिकों को सिंहनाद का स्वर।

झाँसी
सुभाष-दिवस
२३-१-४८

रामसेवक रावत 'प्रवासी'

समाजवादी नेता का संदेश

'रक्त की रेखा' की हस्तलिपि देखी। काव्य का पारखी नहीं हूँ कि उस दृष्टि से कुछ कहूँ। राष्ट्र-कवि गुप्त जी ने रेखा के संबंध में लिखा, इतने से ही मान लेता हूँ कि यह काव्य उन्हें पसंद आया।

आज़ाद हिन्द फौज और नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस की गाथायें भारत के—इतिहास में अमर हो चुकी हैं। उन्हें काव्य-रूप में भी अमरता प्रदान करना किसी नये व्यास का ही काम हो सकता है। शील चतुर्वेदी जी का प्रस्तुत प्रयास सराहनीय है, और मुझे आशा है कि नव-भारत की इन वीर-गाथाओं को देश के बच्चे-बच्चे की जुबान पर रख देने में वह सफल हो सकेंगे।

बम्बई ११-५-४६ जयप्रकाश नारायण

कवि और कृति

आजाद हिन्द फौज के प्रणेता नेता जी श्री सुभाष चन्द्र बोस जिस समय मांडले जेल में थे उन्होंने ९ अक्टूबर सन् १९२५ को एक महत्वपूर्ण पत्र अपने मित्र दिलीप कुमार राय को लिखा था। उस पत्र का एक अंश निम्नलिखित है—

"बन्धुवर, आप इस बात के लिये दीर्घ-निश्वास न लें, खेद प्रगट न करें, कि देश की इस संकटपूर्ण स्थिति में आपको अपना समय संगीत या गान-विद्या में नष्ट करना पड़ता है। बल्कि आप तो समस्त भारत के ग्राम-ग्राम में गानों की बाढ़-सी ला दें। हमारे ग्रामीण समाज में से जीवन की जो सहज स्वाभाविक आनन्दधारा नष्ट हो चुकी है, उसे पुनर्जीवित कर दें। जिसके व्यक्तित्व में कोई संगीत नहीं, जिसका हृदय संगीत से स्पन्दित नहीं होता, वह अपनी जिन्दगी में कोई महान् कार्य न कर सकेगा। कार्लायल ने तो यहाँ तक कहा था कि जिसके रक्त में संगीत व्याप्त नहीं, वह कोई भी दुष्कर्म करने की क्षमता रखता है! यह बात कहाँ तक सत्य है, यह तो मैं नहीं कह सकता पर इतना अवश्य कहूँगा कि जो मनुष्य संगीत से प्रभावित नहीं होता, वह, क्या तो विचार-क्षेत्र में और क्या कार्य-क्षेत्र में, बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता। हमारी यह आकांक्षा है कि हम अपने रक्त की बूँद-बूँद में आनन्द की निरन्तर अनुभूति करें। यही नहीं, हमें साहित्य, संगीत तथा कला को इस भूमि के गरीब से गरीब प्राणियों तक पहुँचाना है···"

अभी उस दिन प्रातःकाल के समय जब स्वाध्याय के लिये हमने श्री दिलीप-कुमार राय की अंग्रेजी पुस्तक The Subhash I Knew* (मेरे परिचित सुभाष) को खोला तो उसमें नेता जी के उपर्युक्त वाक्य को पढ़कर हार्दिक हर्ष हुआ। सौभाग्य से बन्धुवर शील जी उसी दिन हमारे यहाँ पधारे थे और हमने वह पत्र उन्हें भी सुनाया। शील जी ने उसे बहुत ही पसन्द किया, उनकी तबियत फड़क गई और उसकी प्रतिलिपि उन्होंने अपने संग्रह के लिये ले ली। हमें भी उस समय ऐसा मालूम

---

*'सुभाष, जैसा कि मैं उन्हें जानता था' अँग्रेजी पुस्तक नालन्द प्रकाशन-गृह, पोस्ट बाक्स १३२३, बम्बई से, सवा पाँच रुपये में मिल सकती है।

पड़ा कि मानों उपर्युक्त वाक्य खासतौर पर शील जी तथा उनके समानशील व्यक्तियों के लिये ही लिखा गया हो। महापुरुषों के वचन कभी बासे नहीं होते। वे तो सदा ताज़े बने रहते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न रुचियों तथा आदर्शों के व्यक्तियों को अपने जीवन के लिये स्फूर्ति मिल सकती है। वे आकाश में व्याप्त हो जाते हैं और ध्यान के रेडियो सैट से सम्बन्ध मिलाने पर किसी भी साधक की हृत्तन्त्री के तारों को तुरन्त झंकृत करने लगते हैं। शीलजी कोई गायनाचार्य नहीं पर उनके हृदय में संगीत है। वे अनेक सुन्दर गीतों के रचयिता हैं और मधुर कंठ तथा प्राणमय गीतों से वे सहस्रों हिन्दी-भाषा-भाषियों का मनोरंजन तथा उत्साह-वर्द्धन कर चुके हैं। कुण्डेश्वर के निर्मल आकाश के नीचे जब उन्होंने अपना निम्नलिखित गीत हमें सुनाया तो हम उनके स्वर-माधुर्य से मंत्रमुग्ध बनकर विचार-सागर में मग्न हो गये।

एक तारा आसमाँ में झिलमिलाया रात भर,
चाँदनी ने गोद में उसको खिलाया रात भर।
जिससे मिलने की तमन्ना थी न मिल पाया था वो
यों तो अपने दिल का इकतारा मिलाया रात भर।
रात की ख़ामोश घड़ियों में हुआ बेचैन दिल,
क्या बताऊँ मैं मुझे किसने सताया रात भर।
शब के पिछले वक्त में कुछ टूट कर तारे गिरे,
टूटने से मैंने दिल को था बचाया रात भर।
ओ सितारे ओस के मिस तू सहर में रो रहा,
जब कि मैंने चश्म से दरिया बहाया रात भर।

संगीत-शास्त्र का हमें बिल्कुल ज्ञान नहीं, उसके विषय में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं, पर संगीतमय रचनाओं का हमारे मन पर यह प्रभाव पड़ता है कि हमारा ध्यान संगीत के विषय से हट कर अपने प्रिय उद्देश्य पर केन्द्रित हो जाता है। शील जी अपना गीत सुना रहे थे और हम यह सोच रहे थे कि आगामी बसन्त ऋतु में बुन्देलखंड जनपद के लिए क्या साहित्यिक प्रोग्राम बनाया जाय। सुन्दर मनोहारी कविताओं का आनन्द हम अकेले ही नहीं भोगना चाहते, वरन् उसे अपने जनपद के प्रत्येक ग्राम और नगर के साहित्य-प्रेमी व्यक्ति के लिए सुलभ बना देना चाहते

हैं। इस आयोजना में कवि लोग ही बहुत-कुछ सहायक हो सकते हैं। शीलजी को तो हम मधुर गीतों के मिशनरी गायक के रूप में देखना चाहते हैं, जो अपने इस जनपद के ग्राम-ग्राम में काव्य की धारा प्रवाहित कर दें। पर यहाँ पर एक बात हमें ईमानदारी के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी—

कवि-सम्मेलनों के प्रति हमारे हृदय में कुछ विरक्ति-सी रही है और अब भी उनके बारे में हम कुछ-कुछ सशंक हैं। पहले तो हमारी यह आशंका इस सीमा तक पहुँच गई थी कि हम कवि-दंगलों को सांस्कृतिक दृष्टि से विघातक मानने लगे थे और उनके बन्द कर देने के पक्ष में हो गये थे। कहाँ कविता! कहाँ दंगल की बकवास!! पर जब हमें बन्धुवर रंगजी तथा भाई शीलजी के सम्पर्क में आने का अवसर मिला तो हमारे दृष्टिकोण का वह संकोच जाता रहा। और हम इस नतीजे पर पहुँचे कि *कवि-सम्मेलनों तथा उनमें भाग लेने वाले कवियों का हिन्दी जगत् में एक निश्चित स्थान है* और जनता के सांस्कृतिक जीवन को प्रेरणा देने के कार्य में उनका सदुपयोग हो सकता है। दंगली कवि प्राचीन काल के चारणों के सुसंस्कृत अवतार बनाये जा सकते हैं और वे साधारण जनता को ज्ञान तथा शक्ति भी प्रदान कर सकते हैं। पर इतनी आशंका हमें अब भी है कि यदि कवि-सम्मेलनों का उचित नियन्त्रण न किया गया तो वे जनता के सांस्कृतिक धरातल को नीचे भी गिरा सकते हैं।

कवि-सम्मेलन के कवियों के लिए जनता की रुचि का ख्याल करके नीचे की ओर देखना स्वाभाविक है और दृष्टिकोण की इस अधोगति के कारण ऊँची उड़ान उनके लिये कठिन से कठिनतर बनती जायगी। कविवर बच्चन जी तथा दिनकर जी प्रभृति दो-चार कवियों को छोड़कर कवि-दंगलों के कवियों में ऐसे बहुत ही कम निकलेंगे जो अपनी प्रतिभा तथा लोक-प्रियता दोनों क्षेत्रों में (अखाड़ों में तथा साहित्य-क्षेत्र में भी) समान रूप से कायम रख सके हों। हर्ष की बात है कि शील जी उन अपवादों की सूची में अपना शुभ नाम लिखाने के लिये प्रयत्नशील हैं। शील जी की स्वच्छन्द प्रकृति के पीछे एक दृढ़ भावना है और उसे उन्होंने निम्नलिखित गीत में बड़ी खूबी से प्रकट किया है—

मेरी भावुकता से जग का कुछ तो हित हो ही जायेगा।
राग जगाता फिरता हूँ मैं अभी यहाँ की गली-गली में,
और खोजता फिरता हूँ मकरंद यहाँ की कली-कली में,
मेरे मृदु गुंजन से कुछ तो मधु संचित हो ही जायेगा।
व्यर्थ नहीं पूजा करता हूँ मैं अपनी एकाकिन सुधि को,
व्यर्थ नहीं लहराया करता अपने अंतर के अंबुधि को,
धीरे-धीरे सरल सुधाकर प्रतिबिम्बित हो ही जायेगा।
व्यर्थ नहीं देखा करता हूँ नभ के नक्षत्रों की पाँतें,
व्यर्थ नहीं करता रहता हूँ अंबर के तारों से बातें,
धीरे-धीरे नव-भावों का भानु उदित हो ही जायेगा।
व्यर्थ नहीं सहता फिरता हूँ जीवन में निस्सीम व्यथायें,
व्यर्थ नहीं कहता फिरता हूँ जगसे पीड़ा-भरी कथायें,
धीरे-धीरे दुख भी सुख में परिवर्तित हो ही जायेगा।

शीलजी वस्तुतः सुन्दर गानों के रचयिता और गायक हैं। उनकी वास्तविक प्रतिभा का स्रोत वहीं पर है, इसलिये उनका यह कर्तव्य था कि वे अपनी पुस्तक 'कवि के स्वर' (गीत-संग्रह) को सर्वप्रथम प्रकाशित करते। तत्पश्चात् उन्हें अपनी द्वितीय पुस्तक 'विदुला-संजय' नामक खंड-काव्य छपानी चाहिये थी, पर ऐसा न करके उन्होंने *'रक्त की रेखा'* को सब से पहले छपाया है। चूँकि इस ग्रन्थ के द्वारा उन्हें लोक-प्रियता मिली है, इसलिये कृतज्ञता-स्वरूप वे इसे ही पहले जनता के सम्मुख ला रहे हैं। विवरणात्मक काव्य-ग्रन्थों में समान रूप से चमत्कार बनाये रखना अत्यन्त ही कठिन कार्य है और उनके कुछ अंश ही प्रभावोत्पादक बन सकते हैं। हर्ष की बात है कि शीलजी का कवित्व कई स्थलों पर भली-भाँति प्रकट हो सका है। जो स्थल हमें खासतौर पर पसन्द आये वे ये हैं—

१—बहादुरशाह के मकबरे पर
२—तुलादान
३—रक्त-दान

युवक सुभाषचन्द्र घोस के हिमालय-प्रयाण के कई पद्य बड़े ओजमय हैं और तुलादान में सूर्य और घन-घटा का वार्तालाप सुन्दर बन पड़ा है।

'समरभूमि' का अन्तिम अंश तो काफी अच्छा है, पर जहाँ शील जी ने जीवित व्यक्तियों की प्रशंसा की है वहाँ वे ख़तरनाक रास्ते पर भटक गये हैं। इसी प्रकार पुस्तक के प्रारम्भ में भी उन्होंने आलोचकों पर जो व्यंग किये हैं वे भी हमें अनावश्यक जँचे। आलोचकों की चिन्ता हम क्यों करें? "They say, what they say, let them say" (वे कहते हैं, क्या कहते हैं? कहने दो) ये तीन वाक्य प्रत्येक स्वाभिमानी लेखक को अपने स्वाध्याय-भवन में टाँग देने चाहिये।

यह बात भी चिन्तनीय है कि इस काव्य का जन्म प्रतिक्रिया के रूप में हुआ हैं। 'लोक-युद्ध' में प्रकाशित लेखों तथा कविताओं से शीलजी के देश-भक्त हृदय को जो धक्का लगा उसी के परिणाम-स्वरूप उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा है। उनकी सद्भावना के हम क़ायल हैं, उनके विचारों से सहमत भी हैं, पर प्रतिक्रिया को हम बज़ातखुद कोई अच्छी चीज़ नहीं मानते, क्योंकि वह भी हमारी परमुखापेक्षा की सूचक है।

इन त्रुटियों के बावजूद इस पुस्तक के अनेक अंश काव्यमय बन पड़े हैं। कई उक्तियाँ बड़ी चुटीली हैं—

"सोना एकत्रित करने की धुन में सब सोना भूले थे।"
"प्राची में सब से प्रथम उषा थी स्वर्ण थाल लेकर आई"

उपसंहार को हम इस पुस्तक का सर्वोत्तम प्रकरण मानते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि वह पुस्तक में पीछे से जोड़ा गया है। उसके सभी पद्य प्रभावोत्पादक हैं।

जो कोटि-कोटि कंठों के स्वर कहता है कौन उन्हें मृत हैं।
यह कवि विश्वास दिलाता है, नेता सुभाष जी जीवित हैं॥

———

जिस दिन नीचे होगी न मही, ऊपर होगा आकाश नहीं।
उस दिन होगा विश्वास मुझे, इस जग में कहीं सुभाष नहीं॥

———

कवियों की कविताओं में यह खूबी होती है कि अपनी रुचि के अनुसार उनके अनेक स्थल भिन्न-भिन्न पाठकों को पसन्द आते हैं। हमें दो पद्य खासतौर पर जँचे—

"सिंहासन पर अस्थियाँ रहें
शासक अब कोई व्यक्ति न हो।
मानव पर शासन करने को
मानव की बर्बर शक्ति न हो।"

यहाँ शील जी का कवि एक अराजकवादी के रूप में प्रकट हुआ है। इससे स्पष्ट है कि भावी सामाजिक व्यवस्था के विषय में वे उदासीन नहीं, बल्कि सजग हैं।

हमारी रुचि का दूसरा पद्य इस पुस्तक का अन्तिम पद्य है।

"यह रेखा अभी अधूरी है, कम हो न शहीदों का विक्रम।
बलिदान इसे पूरा कर दे, तब पुनः चलेगी रुकी कलम।"

ऐसे अवसर पर जब कि स्वाधीनता संग्राम के अनेक योद्धाओं ने अपने लिये

"पद पैसन की लूट है, लूटी जाइ सो लूट।
अन्तकाल पछतायगा, प्रान जाँयगे छूट॥"

यह मोटो (आदर्श-वाक्य) बना लिया है और चारों ओर के वातावरण में साधना, त्याग तथा तप के बजाय पद, प्रतिष्ठा और भोग का ही प्राधान्य हो गया है, किसी स्वाभिमानी कवि की हृत्तंत्री के तार कैसे झंकृत हो सकते हैं? इसलिये शीलजी की कलम का रुक जाना सर्वथा स्वाभाविक है। पर शीलजी को हम विश्वास दिला देना चाहते हैं कि देश-वासियों की यह मनोवृत्ति क्षणिक ही होगी, क्योंकि भारतीय संस्कृति भोगमूलक नहीं त्यागमूलक है और बकौल श्रद्धेय राजेन्द्रबाबू यहाँ ताज पर सदा लंगोटी को ही गौरव मिला है। जब तक संसार में कहीं भी अन्याय और अत्याचार रहेगा तब तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की नीति का अनुसरण करनेवाली इस पुण्यभूमि में शहीदों का विक्रम हरगिज़ हरगिज़ कम न होगा। उनकी परम्परा निरन्तर क़ायम ही रहेगी।

और, अभी तो इस भूमि में ही बहुत काम करने को पड़ा हुआ है। हमारा मुल्क अभी आज़ाद हुआ है, उसे आबाद करना है, गो इस समय वह उल्टा बरबाद हो रहा है। और यह आज़ादी भी अभी अल्पसंख्यक साधन-सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिली है, मध्यम श्रेणी के कुछ लोगों तक ही उसका आनन्द पहुँचा है। साधारण जनता तो अब भी अज्ञानान्धकार में भटक रही है। दरअसल अभी हमारे राष्ट्र के पुनर्जीवन के प्रथम अध्याय का ही प्रारम्भ हुआ है। द्वितीय अध्याय तब शुरू होगा

जब कि टूंडे चमार, सूरे धीमर, पलटू खँगार और हलके अहीर की सन्तानों को शिक्षा, संस्कृति तथा आत्म-विकास के वे सब साधन सुलभ होंगे, जो आज केवल सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा और रमाशंकर शुक्ल, ठाकुर सज्जन सिंह और बनारसीदास चतुर्वेदी की सन्तानों को प्राप्य हैं। अभी वह दिन बहुत दूर है। खासतौर पर इस पिछड़े हुए प्रान्त बुन्देलखण्ड में तो वह काले कोसों दूर प्रतीत होता है। उस दिन को निकट लाने के पुण्यकार्य में कवि लोग विशेष रूप से सहायक हो सकते हैं। भूरे शासकों के चरण-चुम्बक भाट बनने के बजाय उन्हें शोषित जनता के योद्धाओं के चारण बनना है। काव्य-रचना अपेक्षाकृत बहुत आसान है, पर उसके भावों को अपने जीवन में चरितार्थ करना बहुत मुश्किल।

शीलजी कहते हैं—

"सिंहासन पर अस्थियाँ रहें, शासक अब कोई व्यक्ति न हो।"

और हमने भी बहुत दिन पहले चाय के नशे पत्ते में लिख मारा था :

"शासन के दुश्मन बने, करें निज शासन
सिंहत्व चाहिये हमें. नहीं सिंहासन।"

पर हम राज्याश्रय में अराजकवाद का दम भरते रहे हैं (या दम्भ करते रहे हैं ?) और शीलजी कन्ट्रोल के कपड़ों की दूकान पर समय का सदुपयोग ! कितना कठिन है अपने सिद्धान्तों के अनुरूप निजी जीवन बनाना ! स्वाधीनता के प्रत्येक उपासक के लिये उन्मुक्त आकाश तथा अबाध अवकाश कितना ज़रूरी है इसका अनुभव हमें पग-पग पर हो रहा है।

पर शीलजी अभी कुल जमा पच्चीस वर्ष के ही हैं और उनके विषय में हम निराश नहीं, उनके वर्तमान ग्रन्थ और उसके पीछे जो सद्भावना है, उसे दस पन्द्रह वर्ष बाद भुनाई जानेवाली हुण्डी के रूप में ही मानते हैं। वे *'बालिद्वीप का बलिदान'* नामक एक महाकाव्य भी लिखना चाहते हैं और अपने जीवन के कई वर्ष उसकी तैयारी में लगा देने के लिये उत्सुक हैं। शीलजी के काव्य में प्रतिभा है, व्यक्तित्व में आकर्षण और हृदय में स्वाभिमान [और स्वभाव में प्रमाद ?] और यदि वे अपने ध्येय के प्रति सजग रहे तथा अप्रमाद द्वारा निरन्तर उस ओर बढ़ते रहे तो आगे चलकर वे निस्सन्देह एक प्रभावशाली कवि ही नहीं बन जायँगे, वरन् भावी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में हाथ भी बँटा सकेंगे।

दरअसल काव्य-रचना की अपेक्षा अपने जीवन को काव्य बनाना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। बक़ौल अकबर,

मैं अपने आप में इन शायरों में फ़र्क़ करता हूँ।
स.ख़ुन इनसे सँवरता है, स.ख़ुन से मैं सँवरता हूँ।

इस शुभ अवसर पर जब कि शील जी की प्रथम मानस-सन्तान साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो रही है, हम उन्हें एक चीज़ भेंट करते हैं और वह है प्रातःस्मरणीय नेता जी का सन्देश उन्हीं के अक्षरों में—

Do you want the fragrance of the full-blown rose? If so, you must accept the thorns. Do you want the sweetness of the smiling dawn? If so, you must live through the dark hours of the night. Do you want the joy of liberty and the solace of freedom? If so, you must pay the price. And the price of liberty is suffering and sacrifice...

Bombay
31. 12. 31.

Subhas Chandra Bose.

इस भूमि के करोड़ों निवासी उस सन्देश को विधिवत् ग्रहण करें और तदनुसार अपना जीवन निर्माण, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

आम्र निकुञ्ज
कुण्डेश्वर, टीकमगढ़
१ जनवरी, १९४८

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्यारा सुभाष था देश भक्त
भारत में उसका मान रहे,
हर भारतीय की जिह्वा पर
उसके यश का ही गान रहे।

वन्दना

आज़ाद-फ़ौज की गाथा को
निज हृदय खोल कर लिखता हूँ,
नेता सुभाष को कर प्रणाम
'जय हिन्द' बोलकर लिखता हूँ !

वाणी, साकार स्वयं लक्ष्मी
उसका ही वन्दन करता हूँ,
सेना के जो संचालक थे
सब का अभिनन्दन करता हूँ !

आवश्यकता न कल्पना की
है सत्य स्वयं इतना सम्मुख,
वागीश लेखनी भी जितना
लिखते-लिखते थक, जाके रुक !

आज़ाद फ़ौज की सत्य क्या
कल्पना-पहुंच से बहुत दूर,
इसके लिखने वाले होतें
दिग्गज कवि, तुलसी या कि सूर !

तो संभव था यह घर-घर में
हो ही जाती आदरणीया,
इसके छन्दों की अवली भी
हो ही जाती चिर-स्मरणीया !

अब खद्योतों के द्वारा ही
हो रही प्रकाशित है यह, पर,
आलोक पा सकेगा कुछ भी
जो इसके द्वारा काव्याम्बर !

तो श्रम-साफल्य समझ लूँगा
उर को संतोष मिलेगा कुछ,
आज़ादी के दीवानों को
इसमें यदि दोष मिलेगा कुछ !

तो जोश भरे अंतर की क्या-
हालत होती है वे समझें,
जोशीली असि या मसि कितनी-
संयत होती है वे समझें !

इस काव्य-तड़ाग मध्य कवि तो-
हैं मीन, और कुछ आलोचक,
चुपकी साधे बैठे रहते
हैं बने सौम्य से सम्यक बक।

कोई कवि-मीन उठा ऊपर
ये चोंच मारते हैं फ़ौरन,
स्वातन्त्र्य कवच से सजा सुदृढ़
यदि हुआ मीन का लोहित तन !

तो इनका अस्त्र न चलता है,
चों-चों, का शस्त्र न चलता है,
दृढ़-मीन तनों से बक-मृदु-वपु
हरगिज न कभी भी पलता है !

"बिन काज दाहिने-बायें" को-
फिर भी करता हूँ नमस्कार,
वाणी वरदायनि के सम्मुख
नत-शिर होता हूँ शतत बार !

प्रति-क्रिया

आज़ाद फौज़ थी बनी सफल,
निज देश स्वतत्र कराने को,
जापान-संधि भी की थी तो
अँग्रेज़ी-राज्य हराने को :

पर, भारत में बसने वाले
हैं नहीं 'एक-मत' हो पाते,
मतभेद बढ़ाने की न कभी
वे अपनी आदत खो पाते !

आज़ाद-फ़ौज़ का यदि विरोध
अँगरेज हुकूमत करती थी,
तो, यह तो स्वाभाविक ही था,
अँगरेज़ी सत्ता डरती थी।

नेता सुभाष की छाया में
आज़ाद-फ़ौज़ यदि बढ़ी चली,
गोरी पल्टन की छाती पर
निज क़दम मिलाकर चढ़ी चली।

तो, साम्राज्य मिट जायेगा
सोने की चिड़िया हाथ नहीं—
रह पायेगी फूटी किस्मत—
देगी फिर हरगिज़ साथ नहीं!

पर सरकारी गुट के सिवाय
कुछ भारतीय भी भ्रम में पड़,
नेता सुभाष जी के खिलाफ़
कह गये बहुत ऊबड़-खाबड़!

"लेखक, वक्ता, कुछ चित्रकार
ऐसी धारा में बहे खूब,
भावुक कवि तो भावुकता में
बिलकुल पूरे ही गये डूब!

"वे भूल गये कर्त्तव्य स्वयं
क्यों उनको प्रतिभा मिलती है,
वे भूल गये क्यों काव्य कली
विकसित होती है खिलती है।

"वे भूल गये क्यों कर उनको
कवि होने का सम्मान मिला,
वे भूल गये क्यों कर उनको
है वाणी का वरदान मिला।

"इसलिये नहीं वे निज मद में
हो मत्त कल्पना पर झूलें,
इसलिये नहीं वे सुचिर-सत्य
अपनी झुंझलाहट में भूलें

"है महा खेद ! कवि साहित्यक,
ये पराधीन इतिहास कार,
नेता जी पर कर देते थे
निज कलम कुठारे का प्रहार।

"कोई कहता था नेता जी
हैं त्याज्य-पंथ के आरोही,
कोई कहता था प्रिय सुभाष
हो गया आज देश-द्रही।

"उत्थान-पतन, दायित्व सभी,
होता इतिहासों पर निर्भर,
सच्चे इतिहासों को काला
कर देते कुछ लेखक कायर।

"इसलिये लौह-लेखनी आज
हैं काँप रही कर में थर-थर,
भारत न भूल जाये इतना
आज़ाद-फ़ौज का शेर बबर—

प्यारा सुभाष था देश भक्त,
भारत में उसका मान रहे,
हर भारतीय की जिह्वा पर
उसके यश का ही गान रहे।

'अन्यथा' कल्पना से ही तो
प्रतिरोधी हो आता अंतर,
गूँजे प्रतिरोध स्वरूप तभी
विप्लवी-कवि-हृदय के ये स्वर!

सम्भव है टूटे शिला-लेख,
स्मृति-स्तूप दीखें खण्डहर,
लेकिन मानव की वाणी पर
वाणी का है साम्राज्य अमर।

जब तक मानव में जीवन है
मानव-जीवन में काव्य-कला,
देखें फिर कौन मिटाता है
जग से सच्चा इतिहास भला"।

मेरे अन्तर के कवि को तो
इतना लिख कर सन्तोष हुआ,
है मात्र पारिभाषिक केवल
यदि राजनीति में दोष हुआ

उसको मेरा मस्तिष्क अभी
बतला ही देगा ठीक-ठीक,
इसलिये कि भावुकता न कभी
होती कटु-सत्यों का प्रतीक।

संक्षिप्त-जीवनी

'थे राजनीति में बोस कहाँ'
इसकी क़ीमत जाये आँकी;
प्यारे सुभाष के जीवन की
पहिले हम देखें तो झाँकी!

उनमें बिलकुल ही बचपन से
साधना-शक्ति थी विद्यमान्,
इतनी, जो बतला सकती थी
यह व्यक्ति कभी होगा महान्!

जिन दिनों बालकों को प्राय:
है चाव सुवस्त्रों का होता,
उन दिनों बोस, केवल चद्दर-
ओढ़े ज़मीन पर था सोता !

यदि माता कभी प्यार से जा—
प्यारे सुभाष को दुलराती,
ठंडी ज़मीन पर बालक को--
सोता लख, छाती फट जाती !

अन्तर-पीड़ा को वहीं दबा—
धीरे से कहती थी बेटा—
चल मेरी खटिया पर सो जा,
क्यों शीतल भू पर है लेटा !

उठ कर सुभाष भोलेपन से
माँ की ग्रीवा में हाथ डाल,
मुसकानों के बिखरा प्रसून
कर देते थे उलटा सवाल !

क्यों माता, शिव जी सोते हैं
क्या नहीं हिमालय के ऊपर ?
उनकी माँ करतीं नहीं मना,
मैं सोता यदि शीतल भू पर।

तो क्यों तुमको दुख होता है
मैं भी शंकर का एक अंश,
साधना बनाती श्रेष्ठ सदा
माँ नहीं बनूंगा मैं नृशंस !

ऐसी बातें सुन-सुन कर ही
माता हो जाती थी विह्वल.
मन में सोचा करती अपने,
बालक सुभाष है कुछ पागल।

'कष्टाभ्यास' करने तक ही
पर नहीं साधना सीमित थी.
पर—कष्ट-हरण आकांक्षा भी
अंतर में रही अपरिमित थी।

प्रिय बोस देख पाये थे जब
जीवन में कुल बारह बसंत,
तब उनके निकट-ग्राम में ही
हैजा फैला भीषण दुरंत।

कितने ही घर, नर-हीन हुये
अनुमान रहित नारी-विहीन,
सुन धरती-पुत्र अधीर हुआ
था, पर वह घर में पराधीन।

अन्तर से आ टकराती थी
दिन में रजनी में बार-बार,
अन्तिम श्वाँसें भरने वाले
अगणित असहायों की पुकार।

बालक ने सोचा, माँ से यदि
पूछा तो जा न सकूंगा फिर.
क्षण भर को चिन्ता के बादल
बालक के सम्मुख आये घिर।

'मैडीकल' छात्र जा रहे थे
उस ओर एक दिन सेवा हित,
सुन कर सुभाष के अंतर में
साहस जागा द्रुतमेव अमित।

थी काली अमा, घटा वाली,
नभ-पटल, तारकों से खाली,
ऐसा तूफ़ान कि टकराये
तरु से तरु डाली से डाली।

था अंधकार का ही विकास,
खो चुका अँधेरे में प्रकाश,
था कभी-कभी विद्युत-विहास,
निकला था ऐसे में सुभाष!

पथ भी तो था कण्टकाकीर्ण,
करता था पाँवों को विदीर्ण,
तन ढकने को था साथ लिये-
बालक बस चादर जीर्ण-शीर्ण!

रिमझिम-रिमझिम बरसात रही
आभास शीत का था थोड़ा,
बालक सुभाष ने फ़ौरन ही
चिर-संगिनि चादर को ओढ़ा।

गीली, चिकनी, मिट्टी पर वे
अपन पाँवों को जमा चले,
घन-घटा सहम कर सिमिट गई
नभ में तारों के दीप जले।

झाड़ियाँ और झंखाड़ सभी,
आश्चर्य-चकित रह गये खड़े,
आँधी का वेग विलीन हुआ
नत डालें पकड़े बांस बढ़े!

चलते चलते आ गया निकट
जब हैजे से आक्रान्त ग्राम,
तो प्राची नभ की सीमा भी
लालिमा-पूर्ण होकर ललाम-

सुन्दर सा स्वर्ण बिखेर उठी
बालक ने जोड़ स्व-कर लूटा,
बालक-विहीन घर, माता को
था लगा, भाग उसका फूटा !

नयनाश्रु कपोलों से माँ के-
आ गिरे वहीं चिकनी भू पर,
रवि ने मुक्ता कर दिया उन्हें
निज किरन-अँगुरियों से छू कर !

वे मोती और स्वर्ण केवल-
कवि की कल्पना देख पाई,
पर माँ ने लाल न पाया जब
तो उसकी हिलकी भर आई ।

अवसाद छा गया घर भर में,
पर नहीं बोस की छाया भी,
मिल सकी घर, नगर, डगर मध्य,
रह गई मात निरुपाया सी ।

जा पहुँचे उधर सुभाष जहाँ-
हैजे का था पूरा प्रकोप,
उनके अनवरत परिश्रम से
रोगों का होता गया लोप !

उन ग्राम-निवासी पुरुषों ने
बालक से जब परिचय माँगा-
किस लिये कहाँ से आया है
पूरा-पूरा आशय माँगा ।

बालक बोला, जानकी—पुत्र-
मैं ही कहलाता हूँ सुभाष,
आशय है इतना ही मेरा
मैं पीड़ित जन का बनूँ दास !

यह तो तेजस्वी बालक है,
घर-घर में शोर हुआ उस दिन,
है कार्त्तिकेय अवतार यही
माँ दुर्गा का सुकृपा-भाजन !

जब दूर-दूर चर्चा फैली
माता ने भी यह सुना हाल,
तो दुर्गा-मंदिर में पहुंची
पूजा करने को सजा थाल।

सौ बार आरती देवी की
माता ने की, मन में बोली,
बालक पर निज छाया रखना
हे जगदम्बे तेरी झोली!

माँ उर में तभी 'पुकार' उठी
वह शीघ्र लौट कर आयेगा,
बालक सुभाष कुछ ही दिन में
वापस अपने घर आयेगा।

निज-पत्र प्राप्ति के अगले दिन
नभ में जब सुन्दर-शशि छाया-
फैली तो सहसा, द्वार खोल,
कोई बालक अन्दर आया!

आकर नन्हीं हथेलियों से
माँ के नयनों को लिया मूँद,
परिचित-स्पर्श से माँ विहँसी
पर शबनम से दो रगम बूँद !

ढुलके सुभाष के गालों पर
माता ने उनको आँचल से-
पोंछा, सुभाष को लिपटाया
कस बाँहों में ममता बल से !

द्वितिया का चाँद विहँसता था
ऊपर तारों की टोली में,
उसके समरूप हँसा फिर तो
भू पर माता की ओली में।

सत्तरह बार थे देख चुके
जीवन में जगमग दीवाली,
फिर भी सुभाष को लगती थी
अपनी भावी-रजनी, काली।

थे चाह रहे बस बोस यही
उनको प्रकाश का पुञ्ज मिले,
जीवन की सफल साधना हित
अनुभूत शांति का कुञ्ज मिले।

उन दिनों वहीं कलकत्ते में
श्री राम-कृष्ण मिशिनोत्सव था,
कर्मण्य बोस के लिये तनिक
यह एक मार्ग कुछ अभिनव था!

वे गये वहाँ, थी भीड़ बहुत
नर-नारी-मय कोलाहल में,
खोजने लगे वे चरम-सत्य-
नूतन आँखों से हलचल में।

मंच की ओर को नयन लगे
सहसा, कोलाहल बन्द हुआ,
भाषण करने को सन्यासी-
जब खड़ा शीघ्र सानंद हुआ।

उसकी बुलन्द आवाज़ वहाँ
मारुत-लहरों से टकरा कर,
प्रतिध्वनित हुई हर-नर-उर में
रह गये अनेकों चकरा कर!

पर, तरुण बोस का ध्यान सभी
भाषण पर केन्द्रित बना रहा,
स्वामी के अन्तिम वाक्यों के
सुनने पर भी वह तना रहा।

इसलिये कि अपना स्वाभिमान
साधना सलिल से सींचा था,
कर्मण्य बोस को छोड़ वहाँ
बाकी सब का सिर नीचा था!

जब कहा सिद्ध-सन्यासी ने
है कौन कि भारत की पुकार,
सुन ले जो उठती युग-युग से
कहती चिल्ला कर बार-बार !

"युवको ! साधना सिखाने को,
चट्टानें शीत हिमालय की,
तुमको सौ बार बुलातीं हैं
सुशिलायें शीत शिवालय की !"

सुन, तरुण बोस की रग-रग में
थम गई रक्त की बूँद-बूँद,
उसने निश्चय कर लिया वहीं
अपने दोनों ही नयन मूँद !

आतप, वर्षा, जाड़े की, अब
बाधा न तनिक वह सोचेगा,
साधना हिमालय पर होगी
वह वहीं सत्य जा खोजेगा !

जब गया दूसरी बार पुनः
प्रिय बोस हाय घर के बाहर,
तो पिता जानकी बाबू को
लग सकी न कुछ भी खोज-खबर।

लगती भी कैसे, साधक तो
गिरि-पति की दुर्गम राहों में,
चट्टानों पर निज पाँव जमा
जाते थे चले गुफाओं में।

जो, शीत बर्फ से आच्छादित
उनमें वे आश्रय पाते थे,
साधना शक्ति की चिन्ता में
जग-जग कर रात बिताते थे!

कस्तूरी मृग की नाईं वे
इस तरह भटकते फिरते थे,
जब थक जाते तो बर्फीले
टीलों पर ही जा गिरते थे!

यों एक दिवस आया मन में
है निहित सत्य तो उनमें ही,
'मुझको तो स्वर्ग चाहिये है,
कुछ दिनों फिरे इस धुन में ही।

फिर सहसा यह आया मन में
पथ जग को नया बता दूंगा,
क्यों दुनिया व्यर्थ भटकती है
मैं स्वर्ग धरा पर ला दूंगा।

मेरी कुछ भी आवश्यकता
है यहाँ न हिम-चट्टानों पर,
हा! कितने जुल्म हो रहे हैं
इन दीन-हीन इन्सानों पर।

इतने ऊँचे से देख रहा, हूँ मैं,
युग नंगा, भूखा है,
हरियाली की छाया में भी
भारत माँ का तन सूखा है।

गंगा-जमुना के पानी से
बुझती है माँ की प्यास नहीं,
रवि की परियों सी किरणों में
मिलता माँ का उल्लास नहीं।

पश्चिम-योरुप के तटवर्ती
गँदली—लहरों के सागर से,
जो द्वीप घिरा है उसके ही
पैशाचिकता-मय अंतर से-

दानव ने उठ कर माता की
छाती पर मारा है घूँसा,
अपनी अशिष्ट बर्बरता से
इसकी आत्मा को है चूसा।

मुझको जननी ने टेरा है
मुझको युग आज पुकार रहा,
मैं आत्म वंचना करूं न अब
मुझको मन है धिक्कार रहा।

इतना कह, तरुण-तपस्वी ने
हो उच्च शिला पर वहीं खड़े,
ली विदा हिमालय से तुरन्त,
जो थे धरती पर अचल, पड़े !

दक्षिण-कर उठा सूर्य-अभिमुख
अपना मुख कर यह प्रण ठाना,
मैं स्वयं हिमालय बनूँ मुझे
बलिदान-शक्ति देते जाना।

सूरज की किरणो ! आज मुझे
अब तुम अपनी सी आदत दो,
ओ अर्द्ध-निशा के तूफानो !
मुझको विप्लव की ताकत दो।

इतना कह कर वर-वीर बोस-
द्रुतमेव हिमालय से आये,
सब ने शिक्षा दी अब न कभी-
फिर बोस कहीं घर से जाये।

कुछ दिन में नाम लिखा डाला
'प्रेसीडेंसी' कॉलिज में फिर,
शायद इससे उनके उर में
आई थी थोड़ी शांति अचिर !

अपने विद्यार्थी जीवन में
रहते यों काफी चंचल थे,
पर भारत-माँ के प्रति उर में
श्रध्दा वे रखते अविरल थे।

निज पराधीनता का अनुभव
उनको प्रति-पल ही होता था,
इसलिये कभी एकांत देख
वह तरुण-तपस्वी रोता था !

यदि भूल कहीं कर देता था
कोई भारत पर व्यंग कभी,
इस भाँति फड़क से उठते थे
फिर तो सुभाष के अंग सभी।

सागर की नीरव-लहरों में
मानों तूफान उमड़ आया,
या ज्वाला-मुखी पहाड़ भभक
फटने के हेतु उभड़ आया।

इसके प्रमाण में घटना भी
अद्भुत है एक विचित्र बड़ी,
उसको न किसी भी कवि ने है
कुछ अतिशयोक्ति के हेतु गढ़ी।

थे एक दिवस, निज कक्षा में
प्रोफेसर का भाषण सुनते,
विद्यार्थी-बोस सजग हो कर
प्रति वाक्य हृदय में थे गुनते.

प्रोफेसर ने, था किया जभी
भाषण में, भारत का विरोध,
तो फिर सुभाष के अंतर में
संयत न हो सका, उठा क्रोध।

भृकुटी चढ़ गई, रोष प्रकटा
अधरों के कंपन के द्वारा,
प्रोफ़ेसर की कनपटी ताक
उस पर ऐसा चाँटा मारा!

आँखें तिलमिला गईं उसकी
गोरे गुरु का रुँध गया कान,
गुरु-गौर-कपोलों पर उभरा
बालक-कर का ख़ूनी-निशान!

वह हिन्द-विरोधी वहीं गिरा
पर बालक का पढ़ना छूटा,
दो साल बोस के व्यर्थ गये
शिक्षालय का आश्रय टूटा।

पर आशुतोष बाबू ने फिर
कॉलिज में भर्ती किया उन्हें,
इस तरह सुशिक्षित होने का
आगे था अवसर दिया उन्हें।

मेधावी बालक ने, कुछ ही-
दिन में था बी० ए० पास किया,
निज देश प्रेम की प्रतिभा का
सँग सँग ही खूब विकास किया।

आगे न चाहते थे पढ़ना
जाकर विदेश में इच्छा से,
पर, पिता जानकी बाबू को
था लोभ उच्चतम शिक्षा से।

उनकी थी चाह सुभाष शीघ्र
पढ़ कर कोई पद प्राप्त करे,
उनके कुटुम्ब के यश को वह
सीमित समाज में व्याप्त करे।

आज्ञा-पालन के हेतु गये
पढ़ने विदेश में बोस तभी,
अच्छी श्रेणी में पास किया
सादर आई० सी० एस० जभी।

तो वापस आये भारत में
था सत्याग्रह का ज़ोर बढ़ा,
सरगर्मी वातावरण मध्य
देखी उन पर भी रंग चढ़ा।

थोथी पदवी को फेंका था
सी० आर० दास के द्वारा फिर,
कालिज-राष्ट्रीय खुला था जो
उसके ही थे वे बने स्थविर ।

उन दिनों, जालिमों का सुन्दर-
युवराज आ रहा था भारत,
घावों पर नमक छिड़कने को
कहलाता था वह सेवा-रत !

सुन कर सुभाष ने फौरन ही
उसके विरोध का काम किया,
नौकरशाही नें उन्हें बन्द-
कर था भर-पूर इनाम दिया।

छूटे तो फिर स्वराज्य दल के
कामों में वे थे मग्न हुए,
'फार्वर्ड' पत्र के भी सुफल
संपादन में संलग्न हुये ।

उनकी लेखनी हृदय भीतर
अनुपम अरमान उठाती थी.
उनकी लेखनी विप्लवों का
भीषण तूफान उठाती थी ।

फलतः कायर शासक दल ने
फिर उनको बन्दी कर डाला,
अभियोग चलाये बिना, दूर-
माण्डले जेल में भर डाला ।

जब पुनः छूट आये सुभाष
तो तीस करोड़ प्राणियों ने,
उनका यश गाया एक साथ
था तीस करोड़ वाणियों ने ।

बाहर 'कांग्रिस' की सरगर्मी
उनने कुछ ठण्डी सी पाई,
उनको उस समय संधि-चर्चा-
की नीति न थी बिलकुल भाई ।

बस 'सर्वदली' सम्मेलन में
वे औपनिवेशिक का विरोध-
करने को तत्पर हुये उन्हें
आया 'कांग्रिस' पर बड़ा क्रोध ।

'लखनउ' में वे गरजे यह तो
हम सब की अति कायरता है,
जो औपनिवेशिक लें स्वराज्य
तो हम सब की पामरता है ।

फलतः उन्निस सौ उन्तिस में
लाहौर 'कांग्रिस' का अवसर,
था तब निहरू नें प्रण ठाना
निश्चित यह रावी के तट पर ।

'हम पूर्ण-स्वराज्य चाहते हैं'
भारत ने किया समर्थन था,
निश्चय, सम्मिलित एक स्वर से
छब्बीस जनवरी के दिन था।

अगला स्वतंत्रता-दिवस न पर
थे देख सके प्यारे सुभाष.
भारत-निर्वासन मिला उन्हें
था दूर कहीं उनका प्रवास।

वियना, इटली, स्विट्ज़र में वे
आज़ादी-समर लड़े प्रति दिन.
अध्ययन किया जर्मनी और
इटली में है कैसे सुगठन।

पर अधिक दिनों बाहर न रहे
लौटे तो फिर बन्दी-गृह में,
पर कभी निराशा आ न सकी
इस देश-भक्ति-प्रिय निस्पृह में!

रक्खा था काफी दिनों क़ैद
शासक-दल ने इस बार उन्हें,
इस बार देश था चाह रहा
देना उनका अधिकार उन्हें।

गाँधी-विरोध के बावजूद
भी उनने निज पद बीन लिया,
शेरों की तरह और अपना
वह मुकुट स्वयं ही छीन लिया—

जिसको अपने सर पर रख कर
कहलाये वीर राष्ट्रपति थे,
जिसके कारण सहयोग मिले
उनको लाखों की अभिमति के।

वे तो थे शेर-बबर उनको
हिंसा-विहीन की चाह न थी,
व्रतधारी-बापू को भी तो
उनकी कुछ भी परवाह न थी।

था एक ओर तो जीर्ण-शीर्ण से-
पिंजर-तन में वृद्धापन,
दूसरी ओर तो रग-रग में
बहता था उफनाता यौवन।

गाँधी, संध्या की नीरवता
थे बोस प्रलय की दोपहरी,
दोनों के बीच बड़ी खाई
थी पड़ी हुई यह तो गहरी।

परिणाम हुआ नेता जी ने
अपना सम्मानित पद छोड़ा,
उनको न अहिंसा भाई थी
सो उस मत से नाता तोड़ा।

फार्वर्ड-ब्लाक को स्थापित कर
उनने अपना संगठन किया,
आगे के कठिन अवसरों पर
जिसने था उनका साथ दिया।

जब छिड़ा दूसरा महायुद्ध,
तो प्रजातन्त्र का आडंबर-
रचने वालों ने कहा कि है
निज-निर्णय का अधिकार अमर–

'सब को सब करें आत्म-निर्णय ?'
यह की सुभाष ने जिज्ञासा,
क्या भारत भी इस निर्णय से
अब प्रकट करे अपनी आशा।

तो उत्तर में सुभाष को था
चिर-परिचित कारावास मिला,
निज आत्म-शक्ति का उन्हें वहाँ
कुछ निश्चित सा आभास मिला।

आमरण किया अनशन उनने
आरम्भ, व्यवस्था घबराई,
कर दिया गया द्रुत रिहा उन्हें
शासक-दल ने मुँह की खाई।

मदमाता यौवन काटा सब
'नेता' ने नीरव-जेलों में,
उसने आनंद नहीं पाया
था कभी प्रणय के खेलों में।

मैं ने संक्षिप्त-जीवनी पर
डाला है थोड़ा सा प्रकाश,
जिससे है सिद्ध यही होता,
था उनका 'एकाकी-विकास'।

भारत-हित-चिन्तन करते थे
वे, पर, केवल अपने मत से,
हो नहीं सके थे, कभी किसी
'पार्टी' के सम्मुख आनत वे।

आत्मा-विरुद्ध-अनुशासन में
रहना आता था उन्हें नहीं,
अपने मन के विरुद्ध निर्णय
सहना आता था उन्हें नहीं।

था उनका अपना अलग-पन्थ
विद्रोही उनके अनुयायी,
फिर एक निराले विप्लव की
ज्वाला यदि उनने धधकाई।

तो यह कुछ अद्भुत बात न थी
नादिरशाही के नयनों में-
यदि धूल झोंक कर चले गये
वे आज़ादी के सपनों में।

हा ! भूल अवस्था भारत की
वे निज धुन गुन बैठे मन में.
आ सका न कोई भी आगे
उनके उस समय समर्थन में।

बस राजनीति में असफलता
उनकी झलकी थी इसी ओर.
जो उनकी एक साधना का
आने न दे सकी अभी छोर।

है खैर अरे यह अन्य बात
जैसे भी इतना काम किया,
उसकी हम उन्हें बधाई दें
भारत का ऊँचा नाम किया।

है खेद मुझे कुछ भारतीय-
कह देते थे मक्कार उन्हें,
है खेद हमारे ही भाई
बतलाते थे गद्दार उन्हें।

यदि, मत-वैषम्य हुआ था तो
इससे क्या आता जाता था,
वह तो भारत की आज़ादी-
के ही नित गाने गाता था।

मज़दूर-मदद-मद में कुछ जन
इस बुरी तरह से गये भूल,
जो अब निज आँखें मलते हैं
शुभ-आश-चन्द्र पर फेंक धूल।

मैं ने यह सब कुछ कहा सुना
इसलिये कि मुझको ज्ञात यही,
जनता-जनार्दन चाहे जो
माननी पड़ेगी बात वही।

तुला दान

सिंगापुर में जनता ने जब,
चाहा था निज नेता जी का·
करना अनुपम सा तुला-दान,
मापक रख सोने-चाँदी का।

तो नेता जी कर सके न थे
नाहीं, अपना मुँह खोल कभी,
यद्यपि न भा सकी थी उनको-
अपनी, सोने से, तोल कभी।

'कैसे समझायें जनता को'
नेता जी थे खोये-खोये,
पर्यङ्कोपरि पड़ रहे किन्तु
थे नहीं देर तक वे सोये।

सिंगापुर के नर-नारी तो
हर्षातिरेक से फूले थे,
सोना एकत्रित करने की
धुन में, सब सोना भूले थे।

कोई न सो सका रजनी में
होना है दिन को तुला-दान,
बन गई रात से ही जनता
दानी, सोने का भूला ध्यान।

रवि ने भी 'सोये रहने' में
देखो; थी आना-कानी की,
घन-घटा-द्रगों में दिखीं उन्हें
पर, जब कुछ बूँदें पानी की।

तो बोले, सुनो चाहता था-
मैं देखूँ अनुपम तुला-दान.
द्रुततर अपने रथ पर चढ़ कर,
पर, देख तुम्हारा यह वितान-

मैं प्रश्न करूँगा अब तुम से
क्यों कर तुमने पथ-रोध किया,
मैं ने न अभी तक था यद्य
तुम पर कुछ भी तो क्रोध किया।

घन-घटा सहम कर बोली तब-
सागर की लहरों में सोना
मैं चाह रही थी, पर न मिला
ले आई चिर-परिचित रोना।

कृपया न कुपित हों आप तनिक-
सोये ही रहें अभी रजनी,
श्रीमान् जगायेंगी आ कर
स्वयमेव तुम्हें ऊषा सजनी।

तात्पर्य यही, सिंगापुर में
जनता को यह भ्रम होता था,
होने वाला है अभी प्रात-
इसलिये न कोई सोता था।

घन-घोर-मेघ-वधुओं को तो
सागर में 'सोना' मिला न था,
सो वारि बिखेर गईं भू पर
अब कौन कुसुम जो खिला न था।

दिख उठा सभी कुछ हरा-भरा,
देखो! किसने ली अँगड़ाई.
प्राची में सब से प्रथम उषा-
थी स्वर्ण-थाल लेकर आई।

ली उसने सुख की साँस आज
सुरभित-समीर थी डोल उठी,
प्रत्येक कमल की कली-कली
सम्पुट-पलकों को खोल उठी।

थी नई पवन, थी नई सुरभि
था नया हर्ष, था नवोल्लास !
थीं नव-शाखें, थे नये-पत्र-
नव-नव सुमन का नव-विकास ।

केवल न प्रकृति ही हुई नई
नव-बालाओं को भी देखो !
उनके वक्षों पर सुमनों की
शुभ-मालाओं को भी देखो !

कैसे नव-शोभन लगते हैं
उनके कानों में रहे झूल,
वे नये-नये सुरभित, सुन्दर-
फूले फूलों के कर्ण-फूल ।

वे नव-फूलों के शीश-फूल
वे नव-फूलों के कण्ठ-हार,
नव-नव फूलों के बने सभी
आभूषण के जितने प्रकार ।

स्वर्णाभूषण तो आज सभी
हैं लिये हुये रूमालों में,
कुछ अक्षत-रोली साथ धरे-
अपनें सोने के थालों में।

सब-नारीं, कुसुम-कुमारीं बन
निज-निज घर से थीं निकल पड़ीं,
कुसुमावलियाँ सँग चलने को
अपनी डालों पर मचल पड़ीं।

काटों ने कलियों से पूछा
क्या है? कलियों ने कहा विहँस-
'भारत माँ-सेवक नेता जी-
का है सुन्दर-शुभ-जन्म-दिवस।

शुभ जन्म-दिवस नेता जी का
"जय हो" सब के उद्‌गार उठे,
शुभ जन्म-दिवस नेता जी का
"जय हो" भँवरे गुंजार उठे।

प्रारम्भ हो गया—तुला-दान
थे एक तरफ नेता सुभाष.
उस ओर तुला के पलड़े पर
था सोने का जग-मग प्रकाश !

कर जोड़ नमन कर उठे सभी
बरबस सब के उठ गये हाथ.
अनहोनी को होते देखा
वर सोना और सुवास साथ।

जनता के पल में नयन खुले-
पलड़ा ऊँचा था एक ओर.
दूसरी ओर नेता जी का-
पलड़ा छूता था भूमि छोर ।

जो कुछ था जिसके पास बचा
सब ने सोना दे दिया और,
पर पलड़ा फिर भी नीचा था
नेता जी का. जब किया ग़ौर ।

था गूँज रहा पंडाल सभी
तब इनक़लाब के नारों से,
श्री नेता जी चिरजीवी हों
ऐसी ही प्रबल-पुकारों से।

सहसा, सैनिक तब एक उठा
अपने ऊँचे स्वर से बोला,
'पलड़ा अब तक न समान हुआ'
सुन कर प्रत्येक हृदय डोला।

कुछ और जुही की कलियों सी
बालाओं में जागे विचार,
बहुमूल्य, प्रेमियों से पाये—
थे उनने जो प्रेमोपहार-

मधु-बेला में कम्पित कर से,
वे स्वर्णाभूषण चढ़ा दिये,
कुछ ने सुवर्ण की घड़ियों को
ले कर आगे को बढ़ा दिये।

पर पलड़ा हुआ समान नहीं.
चिन्ता जागी जन-जन-मन में,
तब एक ओर को ध्यान गया,
स्वर फूट रहे थे सिसकन में।

उस ओर दृष्टि दौड़ी सबकी
कैप्टिन लक्ष्मी के साथ एक—
नारी आगे को आती थी
तन-मन का सब खोकर विवेक।

वह सिसक-सिसक कर रोती थी
सिर का जूड़ा था खुला हुआ,
उसकी नयनों की प्याली में
अति रक्त-रंग था घुला हुआ।

संकेत दृष्टि से लक्ष्मी से,
बोले सुभाष, क्या बात ? कहो !
मैं सुनने को हूँ व्यग्र बहुत !
अब और अधिक मत मौन रहो।

बोलीं लक्ष्मी, कि रणस्थल से
आया है ऐसा समाचार-
इनके पति हुये शहीद वहाँ
इनका संकट है दुर्निवार !

नेता सुभाष ने उसी समय
अपनी टोपी रखली उतार,
वह नारी आगे को आई
आँखों में लेकर अश्रु-धार !

पहले निज कंपित हाथों से
नेता जी को कर नमस्कार,
क्षण भर के लिये अचेतन हो
फिर निज संज्ञा पर कर विचार।

नारी ने प्रिय-सौभाग्य-चिन्ह
सिंदूर-युक्त निज-शीश-फूल,
रख दिया तुला के पलड़े पर
पलड़ा सहसा कुछ गया झूल।

सारी जनता की आँखों में
आँसू के कण छलछला उठे,
सेंदुर के कण चिनगारी बन
विप्लव की ज्वाला जला उठे,

पर नेता जी का उर-सागर-
था शांत रहा गंभीर-गहन,
बोले तेरी पद-रज के हित
लालायित हैं देवता बहन!

"पलड़े की तरफ दृष्टि डालो
अब भी है पूरा स्वर्ण नहीं"
सैनिक ने कहा गरज कर था
क्या इनमें कोई कर्ण नहीं ?

इतने में एक बहुत वृद्धा
आई ? मुद्रा गम्भीर बड़ी,
थी, एक चित्र चिपकाये वह
निज छाती से, चुप रही खड़ी

कुछ ही क्षण के पश्चात्, चित्र-
उसने भू पर रख दिया अरे !
था एक उभरता सा चेहरा
फूलों की तरह कपोल भरे !

आँखों में बस आज़ादी के-
सपनों का सा लग रहा जाल,
ग्रीवा कम्बुक की तरह और
हिम-गिरि जैसा था उच्च भाल ।

ओ नेता जी ! यह इकलौते
मेरे बेटे का चित्र इधर.
फिर रुद्ध-कंठ से बोली वह
अपनी आँखों में आँसू भर !

सिंगापुर में अँगरेजों ने
इस महायुद्ध के पहले ही.
इसको शूली पर चढ़ा दिया
इस लिये कि जनता दहले ही।

होता यदि और कहीं मेरे—
दूसरा कोइ सुकुमार-सुमन,
तो भारत-माँ के चरणों पर
करती मै अर्पित, हर्षित-मन।

इतना कह कर उस वृद्धा ने
वह चित्र, धरा पर पटक दिया,
शीशा तो गिर कर चूर हुआ
बस 'फ्रेम' हाथ में उठा लिया।

वह स्वर्ण-फ्रेम उस वृद्धा ने
ज्यों ही जा रक्खा पलड़े पर,
समतल हो गई तुला फिर तो
जय-घोषों से गूँजा अम्बर !

नेता जी द्रुत हो गये खड़े
टूटा उनका इस भाँति मौन,
भारत होगा आज़ाद नहीं
बोलो कहता है आज कौन ?

इस पुत्र-विहीना माता का
वरदान न खाली जायेगा,
आज़ाद-तराने कुछ दिन में
यह भूला-भारत गायेगा।

भारत माता के लालों की
इस तरह रही थी आन-बान,
इस तरह हुआ था पूर्ण वहाँ
शुभ-सिंगापुर में तुला-दान।

रक्त-दान

दो हज़ार वर्ष बीतीं हैं
गाथा एक पुरानी है,
जिसने भी इतिहास पढ़ा है
उसकी जानी-मानी है !

यरूशलम की शुष्क पहाड़ी
उसकी चोटी पर चढ़ कर,
एक मसीहा यों गरजा था-
काँपे थे धरनी-अम्बर !

"मत समझो मैं मानवता के-
लिये शान्ति ही हूँ लाया,
मैं लाया हूँ क्रान्ति भले ही
नहीं बुज़दिलों को भाया।

मैं आया हूँ मानवता के-
हित जलते अंगार लिये,
मैं आया हूँ मानवता के-
हित नंगी-तलवार लिये!

कौन आज तुम में जो बढ़कर-
नग्न-कटारी चूम सके?
कौन आज तुममें जो अरि का-
रक्त-पान कर झूम सके?

कौन आज जो अंगारों पर
क़दम जमा कर बढ़ा चले?
कौन आज जो असि-सीढ़ी पर
स्वर्ग-द्वार तक चढ़ा चले?"

कहा जिस समय था ईसा ने-
यह तब उनके चारों ओर,
देवदूत-स्वर्गीय, स्वर्ण-पंखो-
में भर कर नई हिलोर-

झिलमिल-झिलमिल हिला उठे थे-
एसी अनुपम वायु वही,
'नभ का स्वर्ग धरा पर आया'
माना यह कल्पना सही।

पर, उस दिन इतने युग पीछे-
पराधीन नर-प्राणी ने,
खोये हुये ग़ुलाम देश के-
देवदूत की वाणी ने।

की थी, फिर से वही घोषणा
दो हज़ार वत्सर पहले-
जो ईसा मसीह ने की थी-
सुन जिसको दिग्गज दहले।

था रंगून नगर का जुबली-
हॉल, ठसाठस भरा हुआ.
जन-जन की रग-रग में-
उस दिन, जोश पुराना हरा हुआ।

नेता जी भाषण करने को-
जभी मंच पर हुये खड़े,
सन्नाटा छा गया, सभी के-
नेता जी पर नयन गड़े।

"नहीं शांति का आज युद्ध का-
मैं संदेश लिये आया.
नहीं संत का. आज वीर का-
मैं वर-वेष लिये आया।

आज तुम्हारे लिये समर का-
वीर-निमंत्रण लाया हूँ.
आज़ादी या मौत-मात्र का-
मैं तो प्रिय-प्रण लाया हूँ।

भारत-माता के अंतर के
घावों को अब धोना है,
नहीं आँसुओं से धुल सकते
व्यर्थ तुम्हारा रोना है।

माता की पूजा करने को-
अपना सिर-प्रसून दे दो,
उसके घावों के धोने को-
अपना गरम खून दे दो।

अपना गरम खून दे कर ही
बनना तुम आशावादी,
अपना गरम खून दे कर ही
पा सकते तुम आज़ादी।

अब तक तुमने बहुत दिया है-
सब कुछ, निज घर-बार दिये,
चाँदी के दे दिये महल-
औ सोने के अंबार दिये।

दिये धड़कते हृदय, फड़कते बाहु-
अतुल उपहार दिये.
अपना तो सर्वस्व दे दिया-
मानव पर उपकार किये।

माताओं ने पुत्र और बहिनों ने-
भ्राता वार दिये,
नव-विवाहिता वधुओं ने भी-
निज सुहाग-शृङ्गार दिये।

पर इतने से आज़ादी की-
प्यास नहीं बुझ सकती है,
रण-चंडी की जीभ आज-
लोहू के लिये तरसती है।

भेंट स्वयं निज शीश-फूल दो
पागल बनो पुजारी तुम !
तभी विजय के भी बन सकते-
हो निश्चित अधिकारी तुम।"

वक्ता का चर्मोत्कर्ष पर-
स्वर पहुँचा, कुछ स्वेद बहा,
अपनी दहिनी मुट्ठी कस कर
वज्र-स्वरों में शीघ्र कहा ।

"मैं करता हूँ विजय-घोषणा
तुम निज सिर-प्रसून दे दो,
मैं तुमको आज़ादी दूँगा
तुम तो गरम खून दे दो" !

दिग् दिगंत में गूँज उठी ध्वनि
नभ-तारों से टकरा कर,
श्रोताओं की उर-धड़कन में
उबल उठे नेता के स्वर !

सहसा, किसी एक कोने से
आया एक सम्मिलित नाद,
हम निज रक्त-दान दे देंगे
आज़ादी-'जय' ज़िन्दाबाद !

नेता जी ने उसी ओर को
दृष्टि फेर कर तभी कहा,
केवल बातों की न जरूरत
युवक आज दो रक्त बहा !

लिये प्रतिज्ञा-पत्र खड़ा हूँ
देखूँ कौन बढ़े आगे,
इस पर निज हस्ताक्षर कर दे-
तन-मन-धन सब कुछ त्यागे ।

युवक एक पंजाबी द्रुत, कुछ-
जोश भरे स्वर से बोला,
'क्या न रहा विश्वास वचन का'
जो समक्ष काग़ज खोला ?

नहीं-नहीं यह बात नहीं है
नेता जी सतेज होकर-
बोले आज नहीं करना है
स्याही से ही हस्ताक्षर !

आज़ादी के वचन-पत्र पर
आज रक्त से लेख लिखो!
ताकि सदा इतिहास-मंच पर
तुम दीवाने अलग दिखो।

सब ने एक सम्मिलित स्वर से
अपनी स्वीकृति दे डाली,
आई एक कुमारी आगे
आज़ादी की मतवाली।

कटि से कर में गही 'हाँकिनी'❀
और तर्जनी को चीरा,
लाल-लाल से बिन्दु गिरे, वह-
बनी रही निश्चल-धीरा।

आज़ादी के वचन पत्र पर
किये रक्त से हस्ताक्षर,
सुर-बालाओं ने बरसाये
सुमन-गुलाबी से सत्वर।

❀बर्मी चाकू

जग ने समझा था बाला के
रक्त-बिन्दु ही बरसे थे,
किन्नरियों के किन्तु यूथ ही
सुमन-वृष्टि कर हरषे थे।

पंजाबी, गुजराती आये
सभी, मराठे, बगाली,
भू पर रक्त-बिन्दुओं से ही
'रेखा' एक बना डाली।

नेता जी ने कहा बीच में
सुन लो मेरी बात ज़रा,
जान लिया है तुम सब ही की
रग-रग में है जोश भरा।

एक जगह तुम आज सभी यह
लोहू एकत्रित कर लो,
एक पात्र में ही सब मिल कर
निज-निज रक्त यहाँ भर लो।

और करो फिर हस्ताक्षर तुम-
मेरी यही सलाह, सुनो !
जीवन में बन सके न जिससे-
अलग किसी की राह, सुनो !

नेता का आदेश सभी ने-
श्रद्धा से था मान लिया,
एक पात्र में प्रति योद्धा ने
स्वयं रक्त का दान दिया।

अति अनुपम आदर्श किसी ने
ऐसा सुना न देखा ही
नई एक इतिहास-पटल पर
बनी रक्त की रेखा सी।

बहादुरशाह के मक़बरे पर

आज़ाद-फौज संगठित हुई—
नेता जी ने ले ली कमान,
अग-जग में पूर्ण प्रसिद्ध हुआ-
प्यारे सुभाष का स्वाभिमान।

परतन्त्र देश के वासी ने
ले लिया बिगुल आज़ादी का,
खिल उठता राष्ट्र साथ देता
तो अभी मुकुल आज़ादी का।

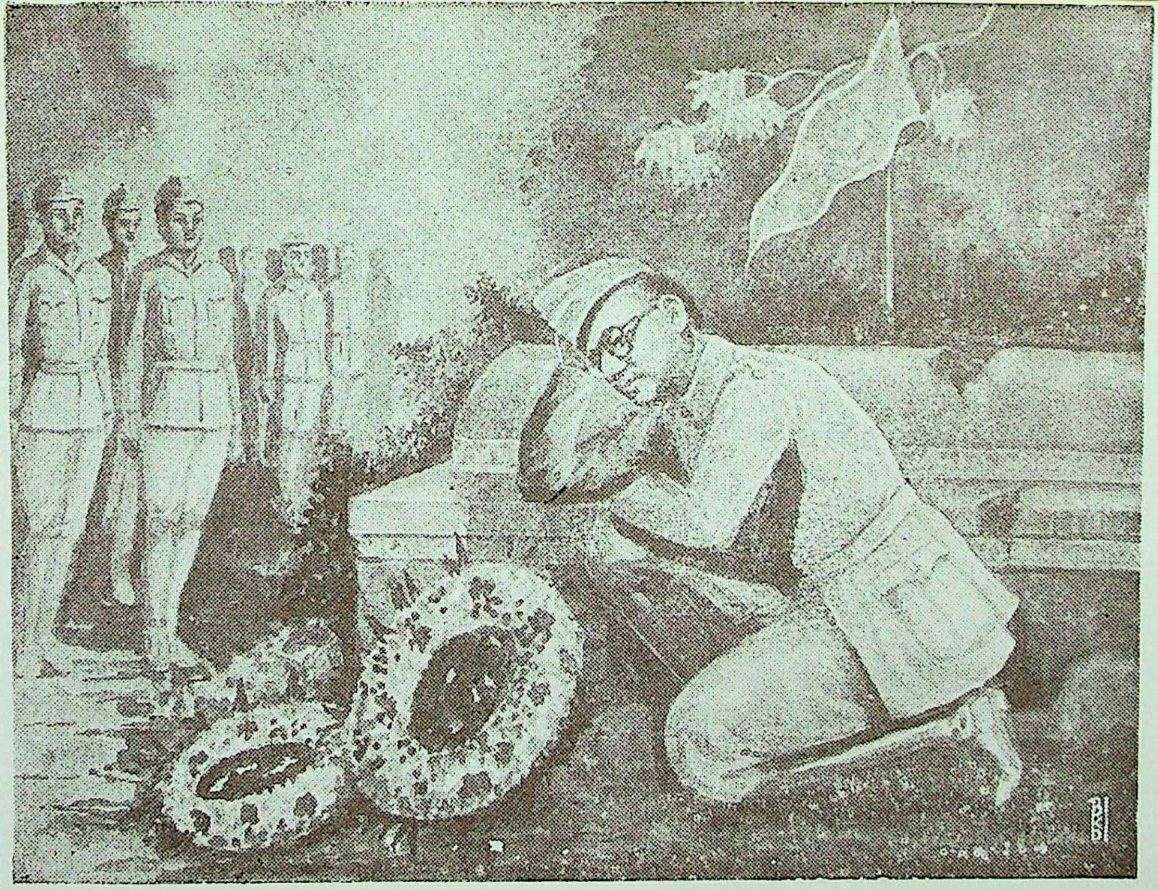

है नहीं बहादुरशाह आज, सोचा होगा जी आया भर,
पत्थर की छाती पिघल गई, बह गये वहाँ दो चरण निर्झर ।

संगठन बोस ने था जैसा—
कर लिया हुआ वह अद्वितीय,
उसमें अपनेपन का अनुभव
करता था तब हर भारतीय।

प्रत्येक मुसलमाँ या हिन्दू
प्रत्येक सिक्ख या ईसाई,
प्रत्येक हुनर का हुनर-मंद
भिश्ती, धोबी, दर्ज़ी, नाई।

अपने को व्यक्ति समझता था-
अपने को शक्ति समझता था-
आज़ाद फौज में आवश्यक—
अपनी अनुरक्ति समझता था।

सेना में कोई ग़ैर न था
हिन्दू-मुस्लिम में वैर न था,
काबा, काशी की अलग-अलग
करता कोई भी सैर न था।

सब का तीरथ था भारत में
आज़ादी पाना पुण्य महाँ,
मन्दिर, मस्ज़िद, गिरजे, द्वारे—
हैं साथ-साथ ही बने जहाँ ।

दुश्मन उनका यदि था कोई
तो वह था अँगरेज़ी शासन,
वे अगर किसी के भूखे थे
तो वह था अँगरेज़ों का तन ।

उनकी प्रतिहिंसा जागी थी
केवल शासन-सत्ता के प्रति,
उनके अंतर में आगी थी
झुलसाने को गोरी-संस्तृति ।

उनका मन्तव्य गुलामी से
अपना पीछा छुड़वाना था,
उनका मतलब भारत माँ की
जंजीरों को तुड़वाना था ।

उनका मन्तव्य जवानों में—
भरसक विद्रोह जगाना था,
उनका मतलब इस भारत में
विप्लव की आग लगाना था।

इसलिये फौज का हर सैनिक
आजाद तरानें गाता था,
दिल्ली चल दो, दिल्ली चल दो,
ऐसे ही गाने गाता था।

उठते, खाते, पीते, सोते-
दिल्ली की याद सताती थी,
सपनों में भी प्यारी दिल्ली,
बस अपने पास बुलाती थी।

वे दिल्ली के दीवाने थे
बस दिल्ली उनको प्यारी थी,
जब देखो दिल्ली चलने की
होती उनकी तैय्यारी थी।

उठता है प्रश्न कि दिल्ली तक
आना ऐसा क्या मुश्किल था,
क्या नहीं रास्ता देखा था-
उन सब ने अपनी मंजिल का।

उनकी मंजिल, पर, साधारण-
जन की नाईं आसान न थी,
आना वे चाह रहे थे पर-
यों ही आने में शान न थी।

वे चाह रहे थे आयें तो
आज़ादी का झन्डा ले कर,
वे चाह रहे थे आयें तो
जयहिन्द-नाद से गूँजें स्वर !

वे चाह रहे थे लाल-किला
उनकी सेना का बने शिविर !
वे चाह रहे थे भारत में
हो भारतीय शासन, सत्वर !

इसलिये सभी वे सैनिक गण
तन, मन, धन, सारा अर्पण कर,
हो गये प्रतिज्ञा-बद्ध कि हम
विद्रोह करेंगे जीवन भर ।

अँगरेज़ी सत्ता के विरुद्ध—
जिसने हम को परतंत्र किया,
आपस में फूट कराने का
जिसने है हम को मंत्र दिया ।

जा रहे माण्डले थे जब ये
फर-फरा—तिरंगा फहराते,
फौजों को गंगा-जमुना की—
मौजों सा प्रतिपल लहराते ।

रंगून-समाधिस्थित देखा,
था शाह बहादुर, पड़ा हुआ,
अरमान हृदय में था जिसके
लन्दन जीते; वह गड़ा हुआ

स्वातंत्र्य-सैन्य के नेता ने
मूकावाहन पहिचान लिया,
आज़ाद हिन्द की सेना ने—
पहिले उस पर ही ध्यान दिया.

मक़बरा नया कर दिया प्रथम
बनवाया ऐसा शानदार—
जाती थी जिस पर दृष्टि—
फिसल, जमती न जमाते कई बार।

थे रंग-बिरंगे रङ्ग भरे
गुम्बज की संग-तराशी में,
दिखती थी सच्ची शिल्प-कला,
उस भारतीय-नक्काशी में।

पत्थर पर काम क़लम का था
जिस पर आशंका होती थी,
यह भारतीय कारीगर की—
महिमा, या लड़ है मोती की।

द्वारे पर शोभन लगती थी
मुक्ता कैसी माला बिखरी,
पत्थर के हाथी दिखते थे
दो साक्षात् दिग्गज प्रहरी ।

ऊँचा झण्डा मुगलों का था
बाहर वाले दरवाजे पर,
आज़ाद-देश के वैभव को
दिखलाता था जो फहर ! फहर !

उसका उद्घाटन करने को—
सिंगापुर से चल कर आये,
रंगून नगर में नेता जी
आये. सब नारी-नर आये ।

रविवार दिवस था वह उस दिन
छब्बीस सितम्बर थी आई,
आज़ाद हिन्द की अस्थाई
सरकार वहाँ निज दल लाई ।

उस दिन सेना सँग बैंड न था
उस दिन मातम का आलम था,
फौजी-जन-बाहों में काली—
पट्टी थी चिन्ह बनी गम का।

उनका झंडा भी अर्द्ध-नमित
सब के मुख पर था मौन सधा,
गो-धूलि साँझ की वेला थी
प्रायः होती जो वर-प्रदा।

नीरव था वातावरण वहाँ
कोई बस धूप जलाता था-
मक़बरा हाय ! गत-वैभव-मय
भारत की याद दिलाता था।

उस जगह प्रथम बूढ़ा मुस्लिम
आयत पढ़ने को हुआ खड़ा-
हट गया दूसरी ओर शीघ्र
फिर उस समाधि पर फूल चढ़ा।

नंगे सिर, नंगे पाँव चले-
आये, समाधि के खूब पास,
जाने किन भावों में डूबे
रह गये खड़े, प्यारे सुभाष।

इक-टक होकर देखते रहे
नेता जी थे पत्थर बन कर,
हाथों के फूल वहीं छूटे
आँखों में आँसू आये भर।

'है नहीं बहादुरशाह आज'
सोचा होगा, जी आया भर,
पत्थर की छाती पिघल गई
बह गये वहाँ दो क्षण निर्झर!

उस करुणा रस की धारा में
सारे सैनिक गण डूब गये,
अस्ताचल को रवि भाग चले
यह दृश्य देखकर ऊब गये।

यदि दिवानाथ कुछ रुक जाते
तो होता उनका तप्त-भाल,
अवनी-तल पर बिखराते वे-
अपने अंगारे लाल-लाल।

नेता जी वीर-बहादुर के-
प्रति, करुणा निज न दिखा पाते
अपने वीरों को वीर-भक्ति का-
पाठ न पूर्ण सिखा पाते।

अच्छा हो गया दिवाकर ने
अस्ताचल को प्रस्थान किया-
गाने वाले खग-वृन्दों ने
द्रुतमेव बन्द निज गान किया।

सन्नाटा बिलकुल छाया था
बत्तियाँ धूप की जलतीं थीं,
अवसाद-पूर्ण सा सौरभ-मय
वे अपना धूम्र उगलतीं थीं।

एका-एकी उस नेता की
उज्ज्वल सी आँखें चमक उठीं,
एका-एकी उस नेता की
भुज-दंडे दोनों धमक उठीं।

एका-एकी बोले सुभाष
अपनी दहिनी मुट्ठी कस कर,
ओ! शाह बहादुर हम बदला
इस बार चुकायेंगे सत्वर।

इसलिये कि मेरी नस-नस में
खूँ खौला है मक़बरा देख
तेरी समाधि के घावों को
मैं ने पाया है हरा देख।

तेरी बस एक कामना थी
यह हरा भरा हिन्दोस्तान,
अँगरेजों का न गुलाम बने
चाहे बन जाये बियावान।

मैं तेरी वीर-प्रतिज्ञा को
अब पूरा करने आया हूँ
या तेरी तरह पुण्य-भू-हित-
मैं भी अब मरने आया हूँ।

जीता, तो तेरे अस्थि-फूल
मैं लाल क़िले में ले जाकर-
आदेश हिन्द को दे दूँगा
इस शाह बहादुर की सुन्दर-

सिंहासन पर अस्थियाँ रहें
शासक अब कोई व्यक्ति न हो,
मानव पर शासन करने को
मानव की बर्बर शक्ति न हो।

फिर नत-मस्तक हो, कर प्रणाम.
चुपचाप चले आये सुभाष
पश्चिम में बिलकुल लुप्त हुआ-
उन अरुण-दिवाकर का प्रकाश

नीरव-पक्षी नीड़ों में थे
थे नीड़ पेड़ की डालों पर,
ऊपर श्रम-विन्दु छलक आये
रजनी के नम से गालों पर।

कुछ क्षण में सुधा-सलिल से निशि
मुख धोने को तैय्यार हुई,
पर, दिन भर सूर्य-शौर्य से जो-
प्रति-पल थी उसकी हार हुई।

सो सुधा-थाल भर कर भी तो
वह अपने मुख को धो न सकी,
श्रम-विन्दु छलक आये थे जो
उनको बिलकुल ही खो न सकी।

सेना-दल को एकत्रित कर-
इतने में, प्रिय सुभाष बोले,
उनकी वाणी की धारा में-
बहते थे आगी के शोले।

अब इस पवित्र-स्मारक सम्मुख-
निज शपथ पुनः दुहराये हम,
भारत के अन्तिम शाह बहादुर को
निज शीश झुकायें हम।

जब था स्वतंत्र हिन्दोस्तान
इस वीर-बबर की छाया में,
था बादशाह यह शाह सफल
तब तो मानव की काया में।

इसकी पुण्य-स्मृति से वीरो!
अपनी रग-रग में जोश भरो,
आज़ाद करो अब भारत को
माँ स्वतंत्रता का कोष भरो।

लो सुनो बहादुर शाह वीर की-
क़ब्र हमारे सम्मुख है
मरने का अब हमको भय क्या?
ऐसी सुमृत्यु देती सुख है।

भारत-वासी, बर्मी, मिलकर
इस बर्बरता से द्रोह करो,
सारे के सारे भारत में-
अब तो सशस्त्र विद्रोह करो।

सौ वर्ष व्यतीत हुये लेकिन
अब तक है ताज़ी याद हमें,
किस भाँति बहादुर लड़ता था
करवाने को आज़ाद हमें।

उसके साथी, मुँह तोड़ दिया-
करते थे अत्याचारों का,
भरसक मुक़ाबला करते थे
वे तीरों का तलवारों का।

उनका बलिदान हमारे उर-
भावों को आज जगाता है,
उनका बलिदान हमारे उर-
घावों में आग लगाता है।

जब शिथिल हुई उसकी सेना,
तब वीर-बहादुरशाह खड़ा-
था हुआ, और उसने अपनी
जानिब से था यह शेर पढ़ा।

"ग़ाज़ियों में बू रहेगी-
जब तलक ईमान की
तेग़ लन्दन पर पड़ेगी-
जा के हिन्दुस्तान की।"

यह शेर, बहादुरशाह कथित
पढ़ कर सुभाष बाबू बोले.
हैं टैंक हमारे पास और
गन-मैशीनें बम के गोले।

यह क़ब्र कह रही है हम से
दुश्मन पर जा पटको घम से-
गैबी गोले, पीछे को मत
हटना अब तुम अपनी दम से।

यह नहीं लड़ाई धन की है
यह नहीं लड़ाई तन की है,
यह युध्द आत्मा जीतेगी-
बाजी अवश्य जीवन की है।

जीते तो होंगे ही स्वतंत्र
मरने पर भी होंगे स्वतंत्र,
लेकिन दुश्मन का आज ध्वंस-
करने पर ही होंगे स्वतंत्र।

इस तरह बोस ने जोश-रंग
निज सैन्य-ध्यान पर चढ़ा दिया,
मानों तीखी तलवारों को-
कुछ और शान पर चढ़ा दिया।

सैनिक सब खड़े हुये तन कर
दी गई सलामी दन-दन कर,
वे उमड़-घुमड़ कर चले तभी
मानों रिपु-दल पर घन बन कर।

समर-भूमि में

आज़ाद-हिन्द सरकार हुई
स्थापित यह जग में शोर हुआ,
उसके उस सैन्य-कोष में धन-
एकत्रित अगणित क्रोर हुआ।

जितने की आवश्यकता थी-
साधारणतः मिल जाता था,
पर उतने की बातें सुन कर-
अरियों का दिल हिल जाता था।

यह श्रेय बोस को ही तो है
सन तेंतालिस का जून मास,
ने बना सके ऐसा पावन
पा सकी जो कि सेना विकास।

शासन की एसी सुव्यवस्था
थी, जिस पर हो संतोष बहुत-
अनुभव था नया-नया लेकिन
होते न कभी थे दोष बहुत।

आज़ाद-हिन्द की सेना के
खेमे गड़ते जिन खेतों में,
आह्लाद-अपूर्व बिखर जाता
निश्चय था उनकी रेतों में।

सुन्दर से खेमे गड़े सभी
थे घास-फूस से मढ़े सभी,
कृषकों की सी कुटियाँ—उन पर
राष्ट्रीय-तिरंगे चढ़े जभी।

लहराते थे नभ-मण्डल में
भारत-स्वतंत्रता के प्रतीक,
चरखे का चित्र सुचित्रित था
जिनके बिलकुल ही बीच ठीक।

आज़ाद-हिन्द सेना का तो
भोजन भी कृषकों का सा था-
इस रिपु-विनाशिनी सेना का-
जीवन भी कृषकों का सा था।

उनको बिस्कुट का ध्यान न था
उनको मक्खन की चाह न थी,
यदि कोई भूखा भी सोता—
तो उसने कुछ परवाह न की।

नेता जी भरसक वीरों का—
सारा सामान जुटाते थे,
फिर भी सेना की सामग्री
पूरी न कभी कर पाते थे।

नेता सुभाष जी रात-दिवस-
जी तोड़ परिश्रम करते थे,
भरसक सेना के वीरों की
सारी दुख-पीरें हरते थे।

सेवा-सुश्रूषा की खातिर,
लक्ष्मी रहती थी साथ-साथ,
स्वयमेव सदा नेता जी का-
होती थी वह दाहिना-हाथ।

गुण-वर्णनकर्त्ता कवि-उर में-
अवशेष जहाँ तक शंसा हो,
उतनी थोड़ी होगी, जितनी—
लक्ष्मी की आज प्रशंसा हो

कोई उसको दुर्गा कह दे-
या कोई झाँसी की रानी,
कोई सुलताना या रजिया—
बेगम की दे उसको सानी।

पर इतना सब कुछ कहने से—
उसका सम्मान नहीं होगा,
राष्ट्रीय-विचारों में डूबे
कवि का यह गान नहीं होगा।

वह जो कुछ है सो निरुपमेय
उपमा तो उसकी पद-रज है,
उसका कोई उपमान नहीं
वह उपमानों की सज-धज है।

कल्पना, कि यह कैप्टिन लक्ष्मी-
लगती है झाँसी की रानी,
झाँसी की रानी कह उट्ठी-
भर कर निज आँखो में पानी।

"अंगरेज़ों से लड़कर मैं ने
आज़ादी-मार्ग प्रशस्त किया,
नत्थे खाँ से जयचन्दों ने
उसको था लेकिन ध्वस्त किया।

मैं कुपित हो चुकी हूँ तब से
मैं खूब रो चुकी हूँ तब से,
जग समझ रहा मैं सोई हूँ
पर, मैं न सो सकी हूँ तब से।

मैं तो जगतां मैं जगती हूँ
पर कोइ जगाने वाला हो
मैं आगी बन कर लगती हूँ
पर कोइ लगाने वाला हो।

मैं अमर-क्रान्ति की दूती हूँ
यह लक्ष्मी क्रान्ति-किरण बनकर,
हर-नर को सुखी बनाने को
आई है इस भारत-भू पर।

मेरे स्वरूप को पहिचानो
अंगार-रूप को पहिचानो,
इस लक्ष्मी का सहयोग करो
प्रतिभा अनूप को पहिचानो।

मैं तो अब तक भी झाँसी के-
निज-दुर्ग-द्वार पर रहती हूँ,
अणु-अणु से भी कण-कण से भी-
मैं अपनी गाथा कहती हूँ।

तुम नहीं समझ पाते तो क्या?
तुम नहीं पास आते तो क्या?
मेरी असि अब भी पैनी है-
तुम नहीं आज़माते तो क्या—

इसका भी दोष अरे मेरे-
ऊपर ओ! लाल धरोगे तुम?
या शत्रु-रक्त से अब मेरा,
यह सूना भाल भरोगे तुम?"

कहती है यह लक्ष्मी बाई
झाँसी की रानी रण-धीरा,
कैप्टिन लक्ष्मी को तुम समझो
मुझसे भी और अधिक वीरा।

कैप्टिन-लक्ष्मी की काया में-
क्यों देख रहे सुलताना को,
क्या भूल गये इतनी जल्दी
तुम वह अतीत-अफसाना हो।

जब मुग़लशाह अकबर ने निज-
बेटे को भेजा था रण में,
"जो अहमद नगर, स्वतंत्र रहा,
उसको ग़ुलाम करने क्षण में

इतनी भारी सेना लेकर—
जिसकी गणन न हुई संभव,
जो उमड़-घुमड़ कर चलती थी
जिसकी पग-ध्वनि के भीषण-रव-

सुनकर, सुलताना सजग हुई
थी शक्ति संगठित की उसने,
जो जो राजे प्रण-बद्ध हुये
उनकी ही सैन्य-सहित उसने।

मुग़लों पर धावा बोला था
तोपों के मुँह को खोला था,
तलवार-तराज़ू के ऊपर
लाखों शेरों को तोला था।

वह अकबर-पुत्र मुराद कभी
कर पाता पूर्ण मुराद नहीं,
यदि सुलताना का ही वज़ीर-
ता उसको इमदाद नहीं।

सुलताना हुई शहीद हाय!
परिमाणु अशेष छोड़ अपने,
पर निज-समाधि में देख रही
आज़ादी के अब तक सपने।

सुलताना बेगम की समाधि
देखो कितनी सूनी लगती,
कल्पना पूँछती शीघ्र बता
तू सोती अब तक या जगती।

तो उत्तर की नीरवता में
अनुमान यही लग पाता है,
यह गहन गुलामी-धूम्र उसे
प्रतिक्षण ही दुख पहुँचाता है।

जब उसको अपने सा प्राणी
इस युग में आज स-देह दिखा,
तो उसने कवि की वाणी को
निज मंत्र आज सस्नेह सिखा।

कहलाया है कि यही लक्ष्मी
है इनक़लाब की चिनगारी,
सत्ताशाही के ईंधन को
कर सकती खाक यही नारी!"

आज़ाद फौज के सैनिक गण
यह सोच जोश में भरते थे,
भारत आज़ाद कराने को
रिपु मार, स्वयं भी मरते थे।

नेता जी आगे चलते थे
सारा भय त्यागे चलते थे,
अरियों के सीनों पर गोलीं
दन-दन-दन, दागे चलते थे।

रणवीर अनेक निकलते थे
तोपों से आग उगलते थे,
गोलों की भीषण मारों से
रिपु-दल सब पल में जलते थे।

सारी सेना, लासानी थी,
सागर लहरों के पानी सी-
लहराती बढ़ती जाती थी
उसकी गति तो तूफ़ानी थी।

चलती, तब हिलती थी धरती
सेना बन जाती, शंकर थी,
ताण्डव से धूल उड़ा मानों-
आभा हरती थी अंबर की।

जिस दल के पीछे पड़ जाती
जिस दल के ऊपर बढ़ जाती,
उसको आफत से मढ़ जाती
उसकी छाती पर चढ़ जाती।

अरियों के छक्के छुटते थे
दिखते थे रिपु, दम-घुटते से,
दुश्मन-दल-प्राण-रतन मानों
वे-मोल वहाँ पर लुटते थे।

जय हिन्द बोल, वर बढ़े जहाँ
लाशों से भर कर गढ़े वहाँ,
लाशों पर होकर खड़े वहाँ
दुश्मन से जी भर लड़े वहाँ।

आज़ाद-फ़ौज़ की तोपों की
जिस ओर मार हो जाती थी,
उस ओर क्षितिज की सीमा भी
कुछ धुँआधार हो जाती थी—

नेता जी आगे चलते थे
सारा भय त्यागे चलते थे,
अरियों के सीनों पर गोलीं
दन-दन-दन, दागे चलते थे।

रणवीर अनेक निकलते थे
तोपों से आग उगलते थे,
गोलों की भीषण मारों से
रिपु-दल सब पल में जलते थे।

सारी सेना, लासानी थी,
सागर लहरों के पानी सी-
लहराती बढ़ती जाती थी
उसकी गति तो तूफ़ानी थी।

चलती, तब हिलती थी धरती
सेना बन जाती, शंकर थी,
ताण्डव से धूल उड़ा मानों-
आभा हरती थी अंबर की।

जिस दल के पीछे पड़ जाती
जिस दल के ऊपर बढ़ जाती,
उसको आफत से मढ़ जाती
उसकी छाती पर चढ़ जाती।

अरियों के छक्के छुटते थे
दिखते थे रिपु, दम-घुटते से,
दुश्मन-दल-प्राण-रतन मानों
बे-मोल वहाँ पर लुटते थे।

जय हिन्द बोल, वर बढ़े जहाँ
लाशों से भर कर गढ़े वहाँ,
लाशों पर होकर खड़े वहाँ
दुश्मन से जी भर लड़े वहाँ।

आज़ाद-फौज़ की तोपों की
जिस ओर मार हो जाती थी,
उस ओर क्षितिज की सीमा भी
कुछ धुँआधार हो जाती थी—

साकार काल प्रलयंकर सी
उन गैबी-गोलों की मारें,
दावानल सदृश भयंकर सी
उन पवि के शोलों की मारें-

होती थीं अति भीषण-प्रचण्ड
रिपु-दल करती थीं खण्ड-खण्ड-
नभ-मण्डल में कुछ काला सा
होता था उज्ज्वल-मार्त्तण्ड।

दिन की लगती थी रात वहाँ
थी आगी की बरसात वहाँ,
आठों प्रहरों बस होता था
पवि का ही उल्कापात वहाँ।

ऐसा भीषण-रण होता था
ऐसा भीषण-प्रण होता था,
खूनी-आँसू बिखरा-बिखरा-
अरि-भू का कण-कण रोता था।

लोहू की वर्षा रहती थी
शोणित की सरिता बहती थी,
आज़ाद-फौज़ के, अरि-सेना,
प्रतिवार अनेकों सहती थीं।

जब टैंक घड़-घड़ा उठते थे
जब क्रैफ्ट घड़-घड़ा उठते थे,
निज गन मशीन फड़-फड़ कर के
जिस समय फड़-फड़ा उठते थे—

लाशों पर लाशें गिरतीं थीं
प्राणों पर पाशें गिरती थीं,
किंचित उठने से पहले ही
लाखों की श्वासें गिरतीं थीं।

बत्ती पर बत्ती बलती थीं
गोली पर गोली चलती थी,
उस ओर शत्रुओं की पल में
टोली पर टोली जलती थी।

मुर्दा, झुण्डों के झुण्ड गिरे
कुछ के पृथ्वी पर रुण्ड गिरे,
कुछ के अम्बर में समा गये
कुछ के धरती पर मुण्ड गिरे।

गन पर संगीने खिचीं हुईं
अरि-शोणित से थीं सिंचीं हुईं,
जिस ओर नज़र जाती दिखतीं
लाशों पर लाशें बिछीं हुईं।

मचता था हाहाकार वहाँ
रण चण्डी का था मन चाहा,
काली-माँ की बलि-वेदी पर
होता था यों स्वाहा! स्वाहा!

वीरों पर आरोप

यह तो वीरों की सेना थी
दुर्भाग्य रहा पर भारत का,
जो समय-पूर्व बलिदानों से
कर सका न इसका स्वागत हा !

फलतः यह सेना हार गई
हो गये वीर-गरण गिरफ्तार—
अँगरेजों की यह चाह करें
इनके अपराधों पर विचार ।

अँगरेज प्रचारक कहते हैं
सम्राट-विरोधी थी सेना,
मैं कहता हूँ सम्राट कौन ?
सत्ता का हमको क्या देना ?

आज़ाद फ़ौज पर यह सत्ता—
करती है दोषारोपण क्या ?
आजाद-भावना-धन का भी—
कुछ हो सकता है शोषण क्या ?

उस लाल-किले में पेशी थी
जब साथी नेता ढिल्लन की,
श्री सहगल शाहनवाज उठे
दर्शक भी सुधि भूले तन की।

तीनों की निधड़क हुंकारें—
सुन कर दीवारें काँप गईं,
उस लाल-किले की ईंटें भी—
वीरों की गुरुता भाँप गईं।

मनमाने सारे के सारे—
सत्ता, कानून लगा डाले,
हिन्दोस्तानियों के मुख पर
पड़ सकते हैं न कभी ताले।

आजाद फौज के वीरों को
दोगे यदि धमकी फाँसी की,
तो याद तुम्हें करनी होगी—
फिर वही लड़ाई झाँसी की।

जिसको तुम गदर बताते हो
पल भर में सम्मुख आयेगा,
भारत भू का अणु-अणु कण-कण
खूनी रँग में रँग जायेगा।

आगाह इसलिये करते हैं
शासक समाज हो सावधान!
भूलाभाई समझाते हैं
अँगरेज-राज हो सावधान!

"ले अन्न छीन, ले वस्त्र छीन
तू बना भले ही हमें दीन,
तीनों वीरों को फाँसी दी
पर मान इन्हें यदि पराधीन—

तो दो हड्डी वाले किसान
ये भारत-माँ के नौजवान,
छेड़ेंगे ऐसा घमासान
कर देंगे दूभर अन्न-पान।

हैं युवक-वीर ये भाव भरे
द्रुत हो जाते हैं ताव भरे
इनकी माँगों को ठुकरा कर
मत सहला इनके घाव हरे।

ये तोड़ डालते सौ विधान
ये फोड़ डालते आसमान,
रखने को अपनी आन-बान
बन जाते गोली के निशान।

हो [illegible] दुर्घर्ष कहीं
छिड़ ज[illegible] फिर संघर्ष कहीं,
आ जाये न फिर से [illegible]
सन-सत्तावन का वर्ष [illegible] ।

दिल्ली होगी [illegible]ह [illegible]
भारत में [illegible]गा रक्त [illegible]
बच्चा-बच्चा इस बाजी पर—
कर देगा अपने प्राण दान ।"

फलतः वे तीनों रिहा हुये
भारत का ऊँचा भाल किये,
उस दिन था विश्व समझ पाया—
भारत में कैसे लाल हुये ।

उस दिन दिल्ली-बाजारों में
उस दिन दिल्ली की गलियों में,
उस दिन दिल्ली के फूलों में
उस दिन दिल्ली की कलियों में ।

था बिलकुल ही उत्साह नया—
था बिलकुल ही उल्लास नया—
उस दिन दिल्ली में दीख उठे—
पृथ्वी नवीन, आकाश नया—

उस दिन दिल्ली में नर-नाहर—
जयहिन्द बोल हुंकार उठे
उस दिन मन्दिर के घंटे भी—
जय 'हिन्द ध्वनि' टंकार उठे ।

उस दिन मस्जिद में कहा गया
जय-हिन्द, पढ़ी पीछे नमाज,
उस दिन गायक की वीणा पर—
जय-हिन्द-स्वरों में सजा साज ।

उस दिन तो साकी हाला भी
जय-हिन्द बोल कर देता था,
उस दिन मधुपायी प्याला भी
जय-हिन्द बोल कर लेता था ।

उस दिन हर हर करने वाले
विजया न तोल कर पीते थे,
'शिव-जय' भूले, भर पेट भंग
'जय-हिन्द' बोलकर पीते थे।

उस दिन तितलियाँ तिरंगी हीं
हर जगह डोलतीं दिखतीं थीं
कलियाँ भी चटखन के स्वर में—
'जय हिन्द' बोलती दिखती थीं।

उस दिन दिल्ली मतवाली थी
रजनी उस रोज न काली थी,
उस दिन दिल्ली के घर-घर में
जगमग-जगमग दीवाली थी।

विद्युत-वल्बों की जाली से
नूतन-सौंदर्य-प्रणाली से,
घर-दूकानें थीं सजी हुईं
मंजुल-मंजुल हरियाली से।

उप-संहार

इस गाथा के नायक-नेता
हैं कहीं यकायक लुप्त हुये,
है खो जाने का शौक उन्हें
इसलिये कहीं हैं गुप्त हुये।

लेकिन कवि का भावुक मन तो
करता इस पर विश्वास नहीं,
रहते आये व रहेंगे भी-
भारत के वीर-सुभाष यहीं।

राणा-प्रताप जब जीवित हैं
जीवित हैं वीर-शिवाजी भी,
तब कैसे यह विश्वास करें
जीवित न यहाँ 'नेता जी' ही।

प्रति-पल निराश होने वाले-
अपने उच्छ्वासों को देखो,
ओ क्रूर ! अविश्वासी मानव !
अपने विश्वासों को देखो।

अपने सँग करना सीखा है
तुमने अब तक विश्वासघात,
तुम लगा रहे अपना हिसाब
बस जोड़ रहे हो पाँच सात।

यदि चाह रहे पौ-बारह तो-
बाजी पर प्राण लगा डालो,
सोये से शौर्य्य-पराक्रम को
अपने में आज जगा डालो।

जो कोटि-कोटि कंठों के स्वर,
कहता है कौन उन्हें, मृत हैं,
यह कवि, विश्वास दिलाता है-
नेता-सुभाष जी जीवित हैं।

जिस दिन नीचे होगी न मही
ऊपर होगा आकाश नहीं,
उस दिन होगा विश्वास मुझे
इस जग में कहीं सुभाष नहीं।

भारत के बच्चे-बच्चे में
हमको सुभाष का रूप दिखे,
बन्धन करने को छिन्न-भिन्न-
प्रतिभामय-शौर्य अनूप दिखे।

यह 'रेखा' अभी अधूरी है
कम हो न शहीदों का विक्रम,
बलिदान इसे पूरा कर दें
तब पुनः चलेगी रुकी कलम !